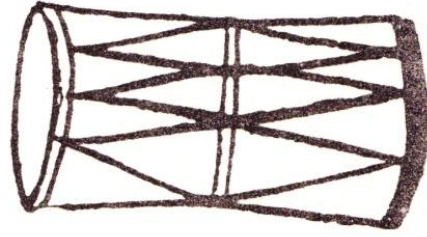


प्रथम अध्याय-1

वाद्य वर्गीकरण एवं अवनद्ध वाद्य का ऐतिहासिक वर्णन ।



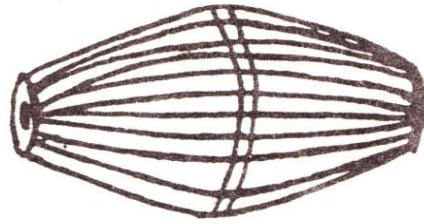
आंकिक



आलिंग्य



मृदंग हरीतकी



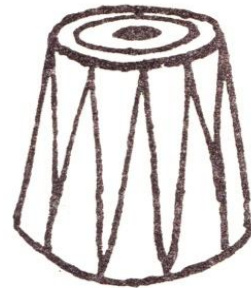
मृदंग यवाकृति



ददूर



त्रिपुष्कर



उर्ध्वक

प्रथम अध्याय – वाद्य वर्गीकरण एवं अवनद्ध वाद्य का ऐतिहासिक वर्णन

वाद्य का संगीत में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है वाद्यो बिना संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वाद्य वह है जिसके द्वारा मधुर ध्वनि उत्पन्न किया जाता है। इन मधुर ध्वनि द्वारा कंठ स्वरों को आधार मिलता है। संगीत अत्यंत मधुर, उल्लासपूर्ण आनंददायक हो जाता है। वाद्य की ध्वनियां गीत रचना में खाली समय की पूर्ति करती है। इन ध्वनियों द्वारा संगीत नीरस नहीं होने पाता, यह एक प्रकार की गति प्रदान करता है।

भगवन्त कौर के अनुसार – भारतीय वाद्यो की विकास परम्परा का इतिहास बहुत पुरातन है। आदि काल में मनुष्य ने भी ध्वनि उत्पन्न करने की विभिन्न विधियां सीखी होगी, जैसे-किसी वस्तु के आघात करने से, रगडने से या फूंक मारने से आदि। इन सभी क्रियाओं के द्वारा ही मनुष्य ने वाद्यों को रूप दिया होगा। वाद्यों का आविष्कार काण्ठ संगीत को आश्रय देने के लिए, गीत की संगति के लिए अखण्ड संगीतमयी वातावरण बनाने के लिए गायक को गीत में विश्राम देने के लिए गीत रचना में रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए हुआ।¹

वाद्य का अर्थ

योगमाया शुक्ला के अनुसार – “संस्कृत भाषा के ‘वद्’ धातु, जिसका अर्थ बोलना होता है उसमें णिच और ‘यत्’ प्रत्यय के योग से वाद्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है ‘बोला हुआ’। वाद्य शब्द को भारतीय संगीत में संगीत यंत्र उसे बजाने की क्रिया तथा उस पर बजाई जाने वाली अंतर्वस्तु (Contents) के रूढार्थ में प्रयोग किया जाता है।²

1- परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत – डॉ० भगवन्त कौर – पृ० सं० 167 प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2- तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियां – योगमाया शुक्ला – पृ०सं० 22 प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

डॉ० विश्वनाथ शुक्ल ने अपने लेख में लिखा है कि वाद्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'वादनीय' या बजाने योग्य यंत्र विशेष यह शब्द वद (क्वादिगण 1009 चुरादिगण 1842 वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदीस्थ) धातु से निष्पन्न होता है जो व्यक्तायांवाचि या स्पष्टोच्चारण करने के अर्थ में व्यवहृत होती है। वदतीति वाद्य जो बोलता है, वहीं वस्तुतः वाद्य है।¹

डॉ० राधेश्याम जायसवाल – वद् धातु से 'वाद्य' शब्द की उत्पत्ति होती है जिसका अर्थ है—सुस्पष्ट बोलना। यों तो कोई भी वाद्य कलाकार के अभाव या अनुपस्थिति में किसी अन्य साधनों के माध्यम से भी कुछ बोल सकता है अर्थात् ध्वनि उत्पन्न कर सकता है, किन्तु उस बोल या ध्वनि का कोई संगीतिक अर्थ नहीं होगा। वे ही वाद्य जब कलाकार की गरिमा से मण्डित होते हैं, तब वे स्वर एवं लयताल के सन्निवेश से मुखरित होकर अपार आनन्द प्रदान करते हैं तथा हर्ष, उल्लास, शौक आदि भावों के अभिव्यञ्जक बन जाते हैं। एतदर्थ, वाद्य शब्द अपने यथार्थ रूप को प्राप्त कर लेता है।² – वाद्यों का सम्बन्ध देवी देवताओं से भी माना जाता है भगवान शिव के नृत्य के समय देवी लक्ष्मी द्वारा गायन, देवी सरस्वती द्वारा वीणा वादन, इन्द्र द्वारा वेणु ब्रह्मा द्वारा करताल वादन का उल्लेख पुराणों में मिलता है। यही नहीं तब वाद्य का सम्बन्ध देवताओं से सुषिर वाद्य का सम्बन्ध गन्धर्वों से, अवनद्ध वाद्य का सम्बन्ध राक्षसों से तथा घन वाद्य का सम्बन्ध किन्नरों से माना जाता है। वाद्यों का इतिहास अति प्राचीन काल से माना जाता है। "मोहनजोदडो और हड़प्पा की खुदाई के बाद से सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति सामने आई है। खुदाई में प्राप्त कलात्मक आकृतियों से यह प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा

1— संगीत वाद्य वादन अंक 1975 ज0फ0 – डॉ० विश्वनाथ शुक्ल – प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस।

2— भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास – डॉ० राधेश्याम जायसवाल – पृ० सं० 3 प्रकाशक वाराणसी संस्थानम् वाराणसी।

धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी।¹

मानव को सर्वप्रथम लय का ज्ञान हुआ था। लय ज्ञान के पश्चात ही विभिन्न वाद्य धीरे-धीरे विकसित हुये। सभी वाद्यों की उत्पत्ति का आधार कहीं न कहीं प्रकृति को माना गया है। मानव जाति के विकास के साथ-साथ ही वाद्यों का विकास हुआ।

संगीत शास्त्र में वाद्य शब्द का विश्लेषण तीन प्रकार से बताया गया है।

1. वाद्य शरीर, 2. अर्थ अर्थात् वाद्य पर बजने वाले वर्ण, 3. वाद्य प्रविधि (Technique) अर्थात् वादन क्रिया में हस्त संचालन का प्रयोग। वाद्य ही मानव की सृजन शक्ति को उन्मुक्त गगन प्रदान करते हैं तथा उसकी कल्पना को नवीन परिवेशों में विचरण का अवसर प्रदान करते हैं।²

वैदिक काल में चतुर्विध वाद्यों का विकास हो चुका था। वैदिक काल में चारों वेदों को निर्माण हुआ। इन वेदों द्वारा ही हमें उस समय की सामाजिक परिवारिक आर्थिक स्थिति का पता चलता है। चारों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं ब्राह्मण अख्यक उपनिषद में संगीत का वर्णन मिलता है। वेदों में सामवेद तो पूर्णतः संगीतमय है। चारों वेदों में संगीत के सभी पक्षों का वर्णन मिलता है। संगीत का प्रयोग विभिन्न धार्मिक कार्यों में किया जाता था। गायन के साथ-साथ वाद्यों का भी पर्याप्त विकास हुआ। डॉ० पराजये के अनुसार ऋग्वेद में निम्न वाद्यों का उल्लेख मिलता है। दुन्दुभि, वाण, नाली, कर्करि, गोधा पिंग और अगाटी इसमें दुन्दुभि के

1— भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण — प्रो० स्वतंत्र शर्मा — पृ० सं० 18 प्रकाशक अनुभव बुक पब्लिकेशन इलाहाबाद।

2— परवावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियां — डॉ० अजय कुमार — पृ० सं० 2 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

अतिरिक्त अन्य वाद्यों का स्वरूप वर्तमान समय में संदिग्ध है¹, रामायण महाभारत काल में अनेकों स्थान पर वाद्य वादन का उल्लेख मिलता है।

सुन्दर काण्ड के 20वें संग में रावण सीता को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं जिसमें गीत वाद्य और नृत्य का भी उल्लेख मिलता है।

महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।

गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्त मैथिलि ॥10॥

अर्थात्—मिथिलेशकुमारी, मुझे पाकर तुम बहुमूल्य पेय, शय्या आसन, नाच, गान और वाद्य का सुख भोगो ॥10॥²

वाद्यों का महत्व

संगीत में वाद्यों का प्रयोग केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं अपितु प्रभु की उपासना के लिए भी किया जाता है। वैदिक काल से ही संगीत अध्यात्मिक उन्नति मोक्ष पाने का सरल माध्यम रहा है। वैदिक काल के सभी मंत्र संगीतमय थे। विभिन्न धार्मिक कार्यों में संगीत का प्रयोग होता था। आज भी प्रभु की आरती, उपासना के लिए समय समय पर विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता है उदाहरण के लिए घंटा, शंख, घंटी, विजयघंटा आदि। इन वाद्यों का न बजाने से प्रभु उपासना अधूरी रह जाती है। ईश्वर की आरती में बजने वाले वाद्य को सुनकर ही व्यक्ति जान जाता है कि प्रभु की आरती हो रही है, यही नहीं हवेली संगीत पुष्टि मार्ग संप्रदाय में भगवान की सेवा में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता था।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा शास्त्रोक्त 36 वाद्यों के इस संप्रदाय में प्रयोग के अन्तर्गत निम्न सूची दी गई— बीना (बीन) मुरली अमृत कुण्डली, जलतरंग

1— परवावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियां — डॉ० अजय कुमार — पृ०सं० 11
प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2— सुन्दरकाण्ड— पृ०सं०— 198 गीता प्रेस गोरखपुर।

मदनभेरी, धौंसा दुंदुभि, निसान, नगारा, शंख, घण्टा, मुहचंग, सिंगी खंजरी ताल खड़ताल, मंजीरा, महुवरि, यारी, झालर, डोल, डफ, डिमडिम, झांझ, मृदंग, गिडगिडी, पिनाक, रबाब, जंत्र, शहनाई श्रीमण्डल, सारंगी, दूवारी करताल, तुरई एवं किन्नरी (हवेली संगीत डॉ० प्यारेलला श्रीमान पृष्ठ 25 राजस्थान संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित हवेली संगीत) से उद्धृत।¹

संगीतज्ञ वाद्यों का प्रयोग मंगलिक कार्यों में भी किया जाता है। मांगलिक कार्यों में वाद्यों का होना शुभ माना जाता है। विवाह पुत्र उत्पन्न पर मंगल गीत गाये जाते हैं। इन मांगलिक गीतों के साथ ढोलक बजाया जाता है। ढोलक का इतना महत्व है कि सर्वप्रथम ढोलक की पूजा की जाती है फिर मांगलिक गीत के साथ ढोलक बजाते हैं। ब्रज में आज भी पुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में मादिलरा बजाया जाता है यह पुत्र उत्पन्न का सूचक है।

इंदौर के पखावज – आचार्य गोस्वामी देवकी नन्दन जी महाराज के अनुसार वाद्य को कभी अशुभ स्थान पर नहीं रखते अथवा गंदी जगह पर, यद्यपि नाद ब्रह्म को मूर्ति स्वरूप नहीं माना किन्तु वाद्य मूर्ति स्वरूप पूजा है यह मंगल भाव से जुड़ा वाद्य है।²

शास्त्रीय संगीत की सभी विधियों में भी वाद्य का होना आवश्यक होता है। गायन कला में अधिक ना सही कम से कम तानपूरा गायकों के लिए आवश्यक होता है उसी प्रकार नृत्य में नृतक को किसी न किस ताल वाद्य की आवश्यकता पड़ती है। आर्चाय भरत ने नाट्य में वाद्यों के अति आवश्यक माना है।

1- हिन्दुस्तानी संगीत के पखावज-वादन को वल्लभ सम्प्रदाय की देन – डॉ० मधु भट्ट तैलाग पृ०सं० 53 प्रकाशक राजस्थान संगीत नाटक अकादमी राजस्थान।

2- हिन्दुस्तानी संगीत के पखावज-वादन को वल्लभ सम्प्रदाय की देन – डॉ० मधु भट्ट तैलाग पृ०सं० 150 प्रकाशक राजस्थान संगीत नाटक अकादमी राजस्थान।

“नाटक के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर वाद्यों के प्रयोग का विधान भी महर्षि के द्वारा शुभ एवं सफलता सूचक माना गया है वे कहते हैं—

उत्सवे चैव याने नृपाणां मडगलेषु च ।

शुभकल्याणयोगे च विवाहकरणे तथा ॥18॥

उत्पाते सम्भ्रमे चैव संग्रामे पुत्रजन्मनि ।

ईदृशेषु हि कार्येषु सर्वातोद्यानि वादयेत् ॥ 19 ॥

स्वभावगृहवार्तायामल्पभाण्डं प्रयोजयेत् ।

उत्थानकार्यं (व्य) बंधेषु सर्वातोद्यानि वादयेत् ॥20॥

अडगनां तु समत्वाच्च छिद्रप्रच्छादने तथा ।

विश्रामहेतोः शोभार्थं भाण्डवाद्यं विनिर्मितम् ॥21॥

भ0ना0अ0 34

सांराश यह है कि प्रत्येक शुभ कार्य में वाद्यों का होना आवश्यक है, यहीं महर्षि का तात्पर्य है।¹

प्राचीन समय में वाद्यों का एक महत्व दूर स्थित व्यक्ति को संदेश देने के लिए भी किया जाता रहा था। राजा महाराजा अपने संदेश को प्रजा तक पहुँचाने के लिए वाद्यों का ही प्रयोग करते थे। वाद्यों का प्रयोग युद्ध के समय भी किया जाता रहा है। युद्ध के आरम्भ एवं समाप्ति पर शंख बजाया जाता था। शंख की आवाज ही युद्ध आरम्भ और समाप्त होने का सूचक था। आदिवासी लोग जंगली जानवरों को भगाने के लिए बहुत ही गम्भीर ध्वनि वाले वाद्यों का प्रयोग करते थे।

1— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मित्र — पृ० सं०—39 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली।

प्राचीन काल में दिन और रात्रि के विभिन्न समयों में अवनद्ध वाद्यों पर नौवत बजाने की प्रथा थी जिससे लोगों को समय का ज्ञान हो जाता था। भेरी नामक कोणाकार चर्माच्छादित वाद्य किसी-किसी गाँव में चौकीदारों को दिया जाता था एवं उन्हे आपत्तिकाल अवसरों पर बजाया जाता था। भेरी ध्वनि से जागृत ग्रामवासी चोर-डाकुओं से ही नहीं अपितु अन्य आपत्तियों से भी अपने बेढेगें अस्त्र-शस्त्र के बल पर सम्मिलित संघ शक्ति के फलस्वरूप विजयी होते थे।¹

वाद्यो का प्रयोग केवल शास्त्रीय संगीत में ही नहीं अपितु लोक संगीत के लिए अति आवश्यक है, विशेषकर लोक नृत्यों में ये वाद्य प्राण समझे जाते हैं। वाद्ययंत्र ही लोग संगीत में ताल, वाद्य और स्वर को नियंत्रित करते हैं। लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, विशेष रूप से ताल वाद्यों का विकास लोक संगीत के साथ-साथ हुआ तथा एक ही प्रकार के वाद्यों को अलग-अलग आकृति एवं नाम प्राप्त हुआ। लोक संगीत के अन्तर्गत घन तथा अवनद्ध वर्गों के वाद्य विशेष रूप से प्रयोग होते हैं जिनके द्वारा प्रस्तुति में प्राण आ जाते हैं। उदाहरण के लिये आल्हा और फाग गायन में ढोलक, नौटकी में नक्कारा, तमाशा में ढोलकी कहारों के गानों में हुडुक बज उठते हैं तब गायन का रंग ही दुगुना हो जाता है।² लोक संगीत में स्वर वाले वाद्यो की अपेक्षा ताल लय वाले वाद्यो को ज्यादा महत्व दिया जाता है। इस प्रकार संगीत में वाद्यो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत। वाद्यो का महत्व सभी धर्मों में भी माना जाता हैं। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, सिक्ख सभी धर्मों में वाद्यो का अवश्य प्रयोग किया जाता है। हिन्दू भजन, आरती के समय विभिन्न वाद्यों का प्रयोग करते हैं, सिक्ख गुरुवाणियों के समय विभिन्न वाद्यो का प्रयोग करते हैं। मुसलमान कव्वाली गाते समय वाद्यो का प्रयोग करते हैं।

1- भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन - डॉ० अरुण कुमार सेन - पृ० सं०-140 प्रकाशक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

2- सौन्दर्य रस एवं संगीत प्रो० स्वतंत्र शर्मा पृ०सं०- 282, प्रकाशक - प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली।

वाद्यों का वर्गीकरण

संगीत विद्वानों ने समस्त वाद्यों को उसके आकार, प्रकार, विशेषता, ध्वनि के आधार पर विभिन्न वर्गों में बांटा है। किसी ने चार तो किसी तीन, पांच भागों में विभाजित किया। किन्तु आचार्य भरत ने समस्त वाद्यों को चार भागों को विभाजित किया है। तत सुषिर घन अवनद्ध। महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता है। उन्होंने लिखा है :-

तत चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च ।

चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ॥1॥

भ०ना० 28/1

इन चारों प्रकार के वाद्यों के लक्षण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—

ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम् ।

घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ॥2॥¹

भ०ना० 28/2

आचार्य भरत ने समस्त वाद्यों के लिए आतोद्य शब्द का भी प्रयोग किया है। आतोद्य शब्द सुन्दरकाण्ड के 10वें सर्ग में 49वें श्लोक में इस प्रकार आया है।

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः ।

निपीडय च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥ 49 ॥²

1- नाट्य शास्त्र भरत मुनि ।

2- सुन्दरकाण्ड- पृ०सं०- 119 प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर ।

वाल्मीकि एवं कालिदास के समय वाद्यों के लिए तुर्य शब्द का भी उल्लेख मिलता है। इन चार वाद्यों के साथ-साथ कुछ विद्वानों ने मानव कंठ से उत्पन्न ध्वनि को भी मिलाकर पंच महावाद्यानि कहा। कुछ ग्रंथों में नखज, वायुज, चर्मज लोहज, शरीरज शब्द का उल्लेख मिलता है। “वीणा आदि वाद्य नखज है, वंशी आदि वाद्य वायुज हैं मृदंग आदि वाद्य चर्मज है ताल, मंजीरा आदि लोहज है तथा कण्ठ ध्वनि शरीरज है। इन पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को पंचमहावाद्यानि कहा गया है।¹

नारदीय शिक्षा में इन वाद्यों में शरीरज ईश्वर द्वारा निर्मित नखज, वायुज, चर्मज, लोहज ध्वनि मनुष्य द्वारा निर्मित माना गया है। नारद में तीन ध्वनियां माना है, आनद्ध, तत और धन। कोहल ने पांच प्रकार के संगीतिक वाद्य माना हैं। प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक वाद्यों के वर्गीकरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। मध्यकाल में तानसेन ने तत, वितत, घन, सुषिर वाद्यों का वर्गीकरण किया है। वितत् शब्द का प्रयोग अवनद्ध वाद्य के लिए किया गया है किन्तु महर्षि भरत द्वारा किया गया वाद्य वर्गीकरण सर्वमान्य है। 1. तत 2. सुषिर, 3. घन, 4. अवनद्ध

1. तत वाद्य :- “तत शब्द तनु धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है विस्तार करना। उणादि सूत्र तनिमृड.भ्याकिच्च से तनु धातु में त प्रत्यय लगकर ततम् शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है जो व्याप्त और विस्तृत हो जिसमें स्वर व्याप्त हो और उसका विस्तार किया जाये।² तत वाद्य का जन्म का आधार कही न कही युद्ध में प्रयुक्त धनुष ही रहा होगा। धनुष के तार की मधुर ध्वनि लोगों को आकर्षित करती होगी और प्रेरणास्वरूप तार युक्त वाद्ययों का जन्म हुआ होगा। तत वाद्ययों का अर्थ उन वाद्ययों से जिसमें तार पर गज से कोण

1- भारतीय संगीत वाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र – पृ० सं०- 41 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

2- संगीत वाद्य वादन अंक – डॉ० विश्वनाथ शुक्ल- 1975 जन०फ० प्रकाशक –संगीत कार्यालय हाथरस ।

से एवं मिजरांव द्वारा ध्वनि उत्पन्न की जाती है। डॉ० लालमणि मिश्र की पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में “वादन की क्रिया के आधार पर इस वर्ग के वाद्यों को चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उँगलियों से छेडकर बजाया जाने वाला वर्ग, जिसमें स्वरमण्डल, तम्बूरा आदि आते हैं।
2. कोण, त्रिकोण (मिजराव) से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग के अन्तर्गत सितार, सरोद, रूद्रवीणा, विचित्रवीणा, तंजोरीवीणा, गोटुवाद्यम् आदि आते हैं।
3. गज से रगडकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में सारंगी, रावण हत्था, इसराज दिलरूबा आदि आते हैं।
4. डण्डी से प्रहार कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में शन्तूर, कानून आदि वाद्य आते हैं।

बनावट अथवा ढांचा की आंकृति के आधार पर तत वाद्यों के निम्न छह उपवर्ग माने जा सकते हैं।

1. लम्बी गरदन वाले वाद्य। इस वर्ग में सितार, इसराज, दिलरूबा तम्बूरा वीणा आदि आते हैं।
2. छोटी गरदनवाले वाद्य। इस वर्ग में रावण— हत्था, सारंगी आदि भारतीय तथा वायलिन मिण्डोलियन आदि विदेशी वाद्य आते हैं।
3. एक या दो तुम्बा युक्त वाद्य। इस वर्ग में तंजोरीवीणा को छोड़कर सभी वीणाएं तम्बूरा सितार आदि आते हैं।
4. तबली के स्थान पर चमड़ा से मढे हुए वाद्य। इस वर्ग में सारंगी दिलरूबा, इसराज, सरोद रबाव आदि रखे जा सकते हैं।
5. ठोस सीधी अथवा घुमावदार लकड़ी से बने वाद्य। इस वर्ग में कुछ प्राचीन भारतीय वीणाएं तथा ईरानी एवं पाश्चात्य हार्प आदि रखे जा सकते हैं।

6. चपटे, पहलदार अथवा चौकोने सन्दूक की भांति बने वाद्य। इस वर्ग में स्वरमंडल तथा शन्तूर आदि रखे जा सकते हैं।

तत वाद्यों के वादन के लिए रखने की स्थिति के आधार पर चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. गोद में रखकर, खड़ा अथवा कंधे पर सहारा लेकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में इसराज, दिलरूबा, सांरगी आदि आते हैं।
2. सम्पूर्ण वाद्य अथवा उसका एक भाग गोद में चित अवस्था में रखकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में स्वरमंडल, तंजोरी वीणा आदि आते हैं।
3. गोद का अथवा जाँघ का सहारा लेते हुए तिरछे रखकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में सितार, सरोद, स्वर, बहार, सुर-सिंगार, रबाब रुद्र वीणा आदि आते हैं।
4. सामने रखकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में शन्तूर, कानून पियानों आदि आते हैं।¹

सुषिर वाद्यः— “शुषिः का अर्थ है छिद्र”। पाणिनि के सूत्र ‘ऊषशुषिमुष्कमघोरः के अनुसार शुषिः शब्द में ‘रः’ प्रत्यय जुड़कर शुषिर शब्द बनता है जिसका अर्थ है— शुषिश्छिद्रमस्यास्ति इति शुषिरः। वह वाद्यजो छिद्रवाला हो। वंश, वेणु मुरली काहल आदि वाद्य शुषिर वाद्य है।²

सुषिर वाद्य, छेदों वाले वाद्य होते हैं, जिनमें फूंक कर या अन्य किसी भांति वायु के दबाव से ध्वनि उत्पन्न करके बजाया जाता है जैसे प्राचीन वेणु, वंशी, मुरली इत्यादि।

1- भारतीय संगीत वाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र – पृ०सं०-47, 48, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

2- संगीतवाद्य वादन अंक 1975 ज०फ० – डॉ० विश्वनाथ शुक्ल- प्रकाशक – संगीत कार्यालय हाथरस।

डॉ० अंजना भार्गव ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन में सुषिर वाद्य के निम्न उपवर्ग किया है।

1. मुंह से फूंककर बजाये जाने वाले वाद्य वंशी, मुरली, पाविका, पुंगी, शहनाई नागस्वर आदि।
2. अन्य किसी साधन से वायु उत्पन्न करके बजाये जाने वाले वाद्य इस वर्ग में हारमोनियम, स्वरपेटी आदि रखे जा सकते हैं।

बनावट के आधार पर –1. फूँक के लिए एक छिद्र तथा स्वर के लिए अन्य छिद्र जिन्हें खोलने तथा बंद करके की क्रिया अंगुली के पोरों से की जाती है। जैसे – वंशी, मुरली, पाविका आदि।

2. फूँक के स्थान पर एक विशेष प्रकार की पत्ती लगी होती है तथा छिद्रों का सीधा सम्बन्ध अंगुली के पोरों से होता है। शहनाई नागस्वर आदि। 3. फूँक के स्थान पर विशेष प्रकार की पत्ती लगी होती है तथा छिद्रों को खोलने तथा बंद करने के लिए चाभियां लगी होती है। जैसे—क्लारियोनेट, सेक्सोफोन आदि।
4. फूँकने वाला मुंह सामान्य किन्तु दूसरी ओर का मुख फूलदार अर्थात् बाहर की ओर फैला हुआ जैसा कि शहनाई नागस्वर आदि में होता है। 5. घुमावदार बने हुए इस वर्ग में अधिकांश पीतल के बने हुए फूँक के वे वाद्य आते हैं जिनका अधिकांश उपयोग बँडों में होता है। 6. रीड लगे हुए वाद्य हारमोनियम, हारमोनिका स्वरपेटी आदि।¹

1— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन – डॉ० अंजना भार्गव – पृ०सं० 55., प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

घन वाद्य:- “घन शब्द हन हिंसागत्योः पीटने या मारने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली ‘हन’ धातु से निष्पन्न होता है। मूतौ घनः पाणिनी के इस सूत्र से ‘अपं’ प्रत्यय और ‘हन’ के स्थान पर घन आदेश हो जाता है। ‘घन’ शब्द सघनता निबिडतावाचक भी है।¹

संगीत रत्नाकार के अनुसार – घनो मूर्तिः समिघाता द्वाघते यत्र तद्घनम्” घन अर्थात् ठोस होने के कारण यही एक मात्र वाद्य है जिसके स्वर में परिवर्तन नहीं होता एक बार जो स्वर स्थापित कर दिया जाए वही इसमें बने रहते हैं। इसलिए इसके बेसुरे होने की सम्भावना नहीं होती है जो ठोस धातु लकड़ी आदि के बने वाद्य होते हैं जिनको टकराकर बजाने की क्रिया अन्वित हैं वे घन वाद्य कहलाते हैं, घन वाद्य का प्रयोजन गीत का मान करना यानि गीत को नापना है।² अर्थात् वह वाद्य जो आपस में टकराकर बजाये जाये जाते हैं, या हथोड़ी डंडी द्वारा बजाये जाते हैं और यह वाद्य कठोर ठोस होने के कारण इसकी ध्वनि सदा एक सी ही रहती है।

“डॉ० भगवन्त कौर के अनुसार— घनवाद्य का विचार मानवीय मन में सूखी हुई फली या फल देखकर आया होगा। सूखने के बाद उसके बीच एक विशेष आवाज करते हैं। आज भी आदिवासी सूखी हुई फलियों के गूदों को रंगदार डोरी के साथ बांधकर हाथ पैर में लटकाते हैं। इसी के आधार पर मनुष्य ने बच्चों का खिलौना झुनझुना बनाया होगा।³

वादन क्रिया के आधार पर इन वर्ग के वाद्यों को 3 वर्गों में बांटा जा सकता है।

1— संगीत वाद्य वादन अंक 1975 जन० फ० — डॉ० विश्वनाथ शुक्ल — प्रकाशक — संगीत कार्यालय हाथरस।

2— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन — डॉ० अंजना भार्गव — पृ०सं० 175, प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

3— परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत — भगवन्त कौर — पृ०सं० 175, 177, प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

1. हाथ या पैर से हिलाकर बजाने वाले वाद्य जिसमें खोखले स्थान पर पत्थर या धातु के छोटे छोटे टुकड़े बने होते हैं। जैसे झुनझुना, घुंघरू आदि।
2. हथौड़ी या धातु के आघात से बजने वाले वाद्य जैसे घंटा, जयघंटा, जलतरंग आदि।
3. एक ही आकार के दो धातु के बने वाद्य जिनको उंगलियों और अंगूठे के सहारे बजाया जाता है जैसे टल्ली, खडताल, चिमटा आदि।¹

अवनद्ध

भारतीय इतिहास पर अगर दृष्टि डाले तो हमें यह ज्ञात होता है कि अवनद्ध वाद्य का जन्म भगवान शिव द्वारा हुआ ऐसा प्रतीत होता है सबसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य डमरू का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। “पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार शिव के द्वारा डमरू वादन से ही देवभाषा संस्कृत के समस्त वर्णों की उत्पत्ति हुई है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार मृदंग नामक प्राचीन अवनद्ध वाद्य के आविष्कारक भी शिव ही हैं।”²

योगमाया शुक्ला के अनुसार – “अवनद्ध और आनद्ध इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति के मूल में नद्ध शब्द है जो कि संस्कृत भाषा के नह् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। नह् का अर्थ बांधना लपेटना, ढंकना, पहनना या धारण करना है। अतः नद्ध शब्द का अर्थ चारों ओर से बँधा ढँका, मढा लपेटा या पहनाया हुआ होता है। इसी नद्ध शब्द के पहले विस्तार या फैलाव के अर्थ वाले ‘अव’ उपसर्ग के योग से अवनद्ध और समीप, सामने तथा चारों ओर से, इत्यादि अर्थों वाले ‘आ’ उपसर्ग के

1- परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत – भगवन्त कौर – पृ०सं० 175, 177, प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2- तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियां – डॉ० योगमाया शुक्ला – पृ० सं० 29 प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

योग से 'अवनद्ध' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। आनद्ध और आनद्ध दोनों का सामान्य अर्थ 'बँधा और ढँका हुआ होने से भारतीय संगीत में ये दोनों शब्द चर्म से बंधे, ढके व मढे वाले वाद्यों के विशेष अर्थ में रूढ हो गए।"¹

डॉ० विश्वनाथ शुक्ल के अनुसार – 'अवनद्ध का अर्थ है। चारो ओर से बंधा हुआ। 'आनद्धते मुखे चर्मणाबध्यते। 'णव बंधने' बाँधने के अर्थ में णह धातु है, इसमें 'आ' उपसर्ग एवं त्तः प्रत्यय है। नहो धः सूत्र से आनद्ध शब्द सिद्ध होता है। चमड़े से गढे मुख वाले पटह (नगाड़ा) मृदंग, डमरू आदि वाद्य अवनद्ध वाद्य है।

इस प्रकार जिस वाद्य के मुख पर चमड़ा मढा होता है तथा जिसे हाथ या किसी अन्य वस्तु द्वारा आघात कर ध्वनि उत्पन्न किया जाता है वह सभी वाद्य अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत आते हैं।²

बात अगर अवनद्ध वाद्य के विकास की करें तो प्रारम्भ में मानव आदिम अवस्था में था। जानवरो को मारकर खाता था जानवरो की खाल का उपयोग अपने शरीर को ढकने गर्म रखने के लिए करता था "उस चर्म को धारण योग्य बनाने के लिए लकड़ी या किसी कड़ी चीज से पीटता होगा। जिसके फलस्वरूप गम्भीर नाद उत्पन्न हुआ होगा, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके अपनी कल्पनानुसार अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया। प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य अपने सरलतम रूप में प्रचलित थें। जैसे— भूमि दुन्दुभि जिसे भूमि के अन्दर बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर किसी जानकार के चमड़े से आच्छादित करके बैल की पूँछ से प्रहार कर बजाया जाता था।³

1— तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियां – डॉ० योगमाया शुक्ला – पृ० सं०— 28 प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

2— संगीत वाद्यवादन अंक 1975 जन० फर० – डॉ० विश्वनाथ शुक्ल—प्रकाशक— संगीत कार्यालय हाथरस।

3— भारतीय तन्त्र वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास – डॉ० रेखा सेठ – पृ०सं० 47, 48 प्रकाशक ईशान प्रकाशक मेरठ।

इस प्रकार अवनद्ध वाद्य का जन्म मानव की आवश्यकता के फलस्वरूप हुआ। इसी सम्बन्ध में पी० साम्बमूर्ति ने अवनद्ध वाद्यों के उद्गम के विषय में बताया है कि खोखली शाखाओं से उत्पन्न ध्वनि को मानव ने अनुभव किया। मजबूत चोंच तथा पंजे वाले पक्षी जब वृक्ष के खोखले तनों पर बैठते थे और अपनी चोंच से उन पर रगड़ उत्पन्न करते थे तो उनसे एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती थी। इस प्रकार खोखला तना, जिसमें कि वायु रहती है वह ध्वनि को एक गूँज प्रदान करता है। इस तथ्य को जानकर मानव को ड्रम बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई।¹ अवनद्ध वाद्य, तत वाद्य, सुषिर वाद्य से प्राचीन माना गया है इसका विकास पहले हुआ ऐसा प्रतीत होता है। प्रारम्भ में मानव गड़ढा खोदकर पशु के चर्म से आच्छादित करके वादन किया जाता था। आचार्य भरत ने अवनद्ध वाद्य के लिए भांड शब्द का भी प्रयोग किया है।

अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण 'अण्डज' देह योनियों के तुल्य ही प्रतीत होता है ये वाद्य अण्डज की भाँति प्राणियों की त्वचा और प्राकृतिक उपकरणों मृत्तिका लकड़ी धातु से मिलकर बनते हैं।²

अवनद्ध वाद्य को विभिन्न उपवर्गों में वादन क्रिया के आधार पर एवं बनावट के आधार पर विभक्त किया जा सकता है।

अंजना भार्गव के अनुसार – वादन क्रिया के आधार पर –

1. दोनों हाथों के पंजो अथवा अँगुलियों से बजाए जाने वाले वाद्य—पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक, खोल, नाल, मादल आदि वाद्य आते हैं।
2. एक हाथ की अँगुलियों से बजने वाले वाद्य—हुडुक, खंजरी, दायरा।
3. शंकु से बजाए जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में नगाड़ा, धौंसा, दमामा, ढाक आदि आते हैं।
4. एक ओर हाथ से तथा एक ओर डंडी से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में बड़ा ढोल, पटह आदि आते हैं।

1— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन — डॉ० अंजना भार्गव — पृ०सं०— 136 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2— पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियाँ — डॉ० अजय कुमार — पृ०सं० 2, 3 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

5. घुण्डी की चोट से बजने वाले वाद्य। इस वर्ग में डमरू ढक्का आदि आते हैं।¹

लालमणि मिश्र के अनुसार – बनावट की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को निम्नलिखित चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

1. भीतर से खोखले तथा दोनों मुखों पर मढ़े हुए वाद्य। इन वाद्यों के पाँच रूप देखने को मिलते हैं:

(क) गोपुच्छा, एक ओर बड़ा मुख दूसरी ओर छोटा मुख तथा बीच से उठा हुआ। भरतकालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक मृदंग को इसी रूप में लिया जा सकता है।

(ख) यवाकृति, अपेक्षाकृत दोनों मुख छोटे तथा मध्य भाग उठा हुआ। भरतकालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक खोल को इस रूप में लिया जा सकता है।

(ग) हरीतकी, दोनों मुख लगभग समान तथा मध्य भाग भी समान। भरतकालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक युग में पंजाबी ढोलक, महाराष्ट्रीय ढोलक आदि का यही रूप प्रचलित है।

(घ) मध्य भाग और दोनों मुख समान। यह वाद्य एक फुट से दो फुट या उससे भी अधिक व्यास के वृत्ताकार होते हैं। इस वर्ग में ढोल, ढाक तथा पाश्चात्य वाद्य साइड ड्रम आदि आते हैं।

(ङ) दोनों मुख समान किन्तु मध्य भाग भीतर धँसा हुआ। इस वर्ग में डमरू, हुडुक आदि आते हैं।

2. प्रथम उपवर्ग के पाँच उपभेदों के बाद अब हम दूसरे उपवर्ग पर विचार करेंगे। ये वाद्य भीतर से खोखले होते हैं किन्तु वह एकमुखी होते हैं और इनका दूसरा छोर बन्द होता है। इस उपवर्ग के भी अनेक उपभेद देखे जाते हैं जिन्हें मुख्यतः निम्नलिखित तीन उपभेदों में रखा जा सकता है:

1— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन — डॉ० अंजना भार्गव — पृ०सं०— 54 प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

- (क) अर्ध गोपुच्छा, इस प्रकार के वाद्यों के मुख का वृत्त जितना होता है उससे दूसरे छोर का वृत्त अधिक होता है।
इस वर्ग में तबला का दाहिना भाग तथा घट आदि रखे जा सकते हैं।
- (ख) अर्ध यवाकृति, इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है तथा इनका दूसरा छोर कुछ नुकीला होता है। नक्कारा, नगड़िया आदि इसी के उपभेद हैं।
- (ग) अर्ध हरीतकी, इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है साथ ही दूसरा छोर, जो बन्द होता है, वह नुकीला न होकर कुछ गोलाई लिये हुए होता है।
3. भीतर से खोखले दोनों मुखों पर मढ़े हुए तथा एक मुख पर मढ़े हुए दूसरे मुख पर बन्द वाद्यों के रूप ऊपर बताये जा चुके हैं। इनका तीसरा रूप वह है जो भीतर से खोखले होते हैं, दो मुख होते हैं किन्तु मढ़ा एक ही मुख जाता है, दूसरा मुख खुला रहता है। ऐसे वाद्यों का प्रचार अफ्रीका तथा पाश्चात्य देशों में देखा जाता है।
4. लकड़ी की चार से छह अंगुल तक चौड़ी पट्टी में जो गोल, पहलदार अथवा अन्य किसी आकृति का छोटा या बड़ा घेरा बनाती है, उसी में एक और चमड़ा मढ़ा रहता है। इस उपवर्ग में अनेक वाद्य हैं जो चंग, डफ, डफला, करचक्र, गंजीरा, खंजरी, दायरा आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।¹

इस प्रकार संगीत विद्वानों ने समस्त वाद्यों को चार वर्ग में बाटा है। इस वर्गीकरण में सभी वाद्य समाहित हो जाते हैं किन्तु आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है संगीत की आवश्यकता के फलस्वरूप कई और वाद्य निर्मित हुए जो इस प्राचीन वर्गीकरण में उपयुक्त नहीं बैठते। जैसे – प्राचीन काल का उपंग वाद्य ऐसा वाद्य था जिसके बनावट में चमड़ा एवं तार दोनों का प्रयोग किया जाता था। इसके तालधारणा (लयधारणा) के लक्षण के आधार पर इसे अवनद्ध या ताल वाद्यो के वर्ग में शामिल किया गया। इसी प्रकार सारंगी, रावणहत्या, इसराज आदि वाद्यो के बनावट

1— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 48, 49. प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

में चमड़ा एवं ततु दोनों का उपयोग किया जाता है। तथापि ये स्वर प्रधान वाद्य होने से इनको तत वाद्यो के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। उपंग वाद्य के तारों द्वारा उत्पन्न ध्वनि से लय धारणा की जाती है। इस प्रकार उपंग वाद्य अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में बिल्कुल भिन्न प्रतीत होता है।¹ “उपंग वाद्य को उसकी रचना के आधार पर अलग वर्ग में रखा जाना आवश्यक प्रतीत होता है मध्यकाल में ऐसे वाद्यो को उनके लक्षणों के आधार पर अलग वर्ग में रखने के विचार का भी उल्लेख है। ऐसे विचार का उल्लेख विमानवत्थु में किया जाकर आतत, वितत, वर्ग का नाम रखा गया था। कुछ ग्रंथकारों ने तत्, आनद्ध, ततानद्ध, घन और सुषिर ऐसे पाँच वर्गों का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया भी है।”²

जलतरंग भी ऐसा वाद्य है जो घन वाद्य में उपयुक्त नहीं बैठता है। “जिसे बनावट की दृष्टि से (इस वाद्य के प्यालों में चीनी मिट्टी की सामग्री प्रयुक्त होती है) घन वाद्य तथा डण्डी से प्रहार कर बजाने के कारण घन वाद्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। किन्तु जैसा कि सर्वविदित है घन वाद्य ताल प्रधान वाद्य होता है। अतएव जलतरंग वाद्य द्वारा लय एवं ताल का निर्वहन नहीं होता बल्कि इस वाद्य द्वारा स्वर वाद्यों की तरह राग, गत गीत आदि का वादन किया जाता है अतएव इस दृष्टि से इसे घन वाद्यों की श्रेणी में रखना उचित नहीं जान पड़ता। आज जलतरंग की तरह अनेक तरंग वाद्य प्रचलन में आ गये जैसे काष्ट—तरंग, घुघुरू तरंग घण्टा तरंग शीश तरंग, जल तरंग, मृदंग—तरंग तबला तरंग आदि।³ इन सभी वाद्यो के लिए एक नया वर्ग होना चाहिए। जिसमें ये सभी वाद्य उस वर्ग में आ जायें। इस नये वर्ग का नाम विद्वानों ने तरंग कहा है। इस प्रकार वाद्यो के छः वर्ग हो गये।

(1) तत वाद्य

(2) अवनद्ध

(3) ततानद्ध वाद्य

(4) घन

(5) सुषिर

(6) तरंगवाद्य।

1— ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे — पृ०सं० 42 प्रकाशक, शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2— वही

3— ताल शास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष निशी गुप्ता पृ०सं० 53 प्रकाशक, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

प्राचीन काल से आधुनिक समय तक वाद्यों के रूपों एवं वादन विधियों में परिवर्तन हो रहा है।

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है विज्ञान के प्रभाव के कोई भी अछूता नहीं है, इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा। आधुनिक समय में अनेक इलेक्ट्रानिक वाद्य आ गये जो विद्युत की सहायता से चलते हैं। जैसे— इलेक्ट्रानिक तानपुरा, इलेक्ट्रानिक सुर—पेटि, सारंग कॉन्सरो, सारंग मैलोडी तालोमीटर आदि। ये वाद्य वर्गीकरण के किसी भी वर्ग में उपयुक्त नहीं बैठते। इसलिए इन वाद्यों को किसी भी वर्ग में नहीं रखा जा सकता। इन वाद्यों के लिए एक नए वर्ग की आवश्यकता है। जिसे इलेक्ट्रानिक वाद्य यंत्र नाम दिया जा सकता है। इस प्रकार यह वाद्यों के वर्गीकरण का यह अन्तिम रूप नहीं कह सकते हैं।

प्राचीन काल एवं वर्तमान समय तक प्रचलित अवनद्ध वाद्य—

दुन्दुभि का ऋग्वेद में इस प्रकार उल्लेख मिलता है कि शत्रुओं को परास्त करने के लिए दुन्दुभि का उल्लेख पाया जाता है। दुन्दुभि की गर्जना वीरों के हृदय में उत्साह का संचार करती है तथा शत्रुओं के हृदय में भय का। दुन्दुभि का घोष समस्त दिशाओं में परिव्याप्त होने की बात अथर्ववेद में उल्लेखित है, रथों की प्रतियोगिता के साथ दुन्दुभि की तुमुल ध्वनि का उल्लेख है। इस वाद्य की चर्चा ऋग्वेद के 01/28/5 मंत्र से आया है जो इस प्रकार से है।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।

इह धुमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः॥

हे उलूखल कूटन की मूसल यदि तू प्रत्येक घर में विद्यमान है तो वैदिक कर्म में उसे प्रकार प्रभूत ध्वनियुक्त शब्द कर जिस प्रकार विजयी की दुन्दुभि गर्जन करती है दुन्दुभि शब्द ध्वन्यनुकारी जान पड़ता है।¹

1— पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियां — डॉ० अजय कुमार पृ०सं० 12 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

संगीत रत्नाकर में दुन्दुभि का वर्णन इस प्रकार है—

आम्रदुमसमुद्भूतों महागात्रो महाध्वनिः ॥ 1145 ॥

कांस्यभाजनसम्भारगर्भो वलयवर्जितः ॥

चर्मनद्धाननो बद्धौ बध्नैर्गाढं समन्ततः ॥ 1146 ॥

दृढचर्मण कोणेन वाद्यो वर्णेन दुन्दुभिः ।

मेघनिर्घोषगम्भीरघोंकारस्यात्र मुख्यता ॥ 1147 ॥

मङ्गले विजये चैव वाद्यते देवतालये ॥

(स०र० वाद्याध्याय पृ०सं० 483)¹

उपयुक्त वर्णन के अनुसार दुन्दुभि में एक ही नग होता है और वह बड़ा होता है। प्राचीन दुन्दुभि तथा भूमि दुन्दुभि एक ही नग का बड़ा नगाडा जैसा होता था किन्तु जब से उसका सम्बन्ध शहनाई आदि से हुआ तब से उससे भी भीषण तथा जोरदार ध्वनि उत्पादन के अतिरिक्त मृदंग ऐसे पाटाक्षर निकालने की भी आवश्यकता हुई। इसीलिए उस बड़े आकार के साथ एक छोटे आकार की झील का भी समावेश हो गया।²

दुन्दुभि का उल्लेख रामायण के युद्ध काण्ड के 42वें सर्ग के 39वें श्लोक में शंख के साथ भी हुआ है—

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तस्विनाम् ।

पृथिवी चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यानादयत् ॥

राक्षसों और वानरों के संग्राम में शंख और दुन्दुभि के घोष और वेगवान राक्षसों के सिंहनाद ने पृथिवी, आकाश और समुद्र को प्रतिध्वनित कर दिया।³

1— संगीत रत्नाकर शारंगदेव ।

2— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 166, 167 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली ।

3— भारतीय संगीत का इतिहास — डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह — पृ०सं० 171 प्रकाशक संगीत रिसर्च एकेडमी कलकत्ता ।

गर्गर

भाष्यकार सायण के अनुसार गर्गर ऐसा वाद्य था जिससे गर्गर ध्वनि उत्पन्न होती थी। यद्यपि इससे वाद्य के स्वरूप का बोध नहीं होता तथापि कल्पना की जा सकती है कि यह उस चर्म वाद्य रहा होगा।¹ ऋग्वेद में गर्गर नाम अवनद्ध वाद्य का उल्लेख इस प्रकार से आया है—

अब स्वराति गर्गरो गोधा परि सन्धिणत् ।

पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रहोद्यतम्! 8/69/9

गर्गर ध्वनि करने वाला विशेष। यह स्पष्ट है कि गर्गर ध्वन्यनुकारी शब्द है। यह एक प्रकार के चमड़े का वाद्य था जिससे गर-गर ध्वनि गूँजती थी और शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करती थी।²

आडम्बर

ऋग्वेद में आडम्बर का भी उल्लेख मिलता है। “यह एक प्रकार का ढोल था। वाजसनेयी संहिता की पुरुषमेघ के बलि प्राणियों की तालिका में ढोल बजाने वाले आडम्बरघात का उल्लेख है।³

यह एक अवनद्ध वाद्य है। अमरकोश ने इसे पटह के साथ गिनाया है। “पटहाडम्बरौ समौ” भानुजी दीक्षित ने इसकी व्युत्पत्ति को इस प्रकार बतलाया है। “डम्बं राति आ (समन्तात्) चारों ओर जो डम्ब-डम्ब की ध्वनि को फेंके वह आडम्बर है।⁴

1— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन डॉ० अंजना भार्गव पृ०सं० 18 प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2— पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियां— डॉ० अजय कुमार पृ०सं० 14 प्रकाशक, नई दिल्ली।

3— परवावज की उत्पत्ति एवं विकास एवं वादन एवं वादन शैलियां — डॉ० अजय कुमार — पृ०सं० 15 प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

4— भारतीय संगीत का इतिहास — डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह पृ०सं० 174 प्रकाशक संगीत रिसर्च एकेडेमी कलकत्ता।

वाल्मीकि रामायण में सुंदरकांड के 10वे सर्ग में श्लोक संख्या 45 में आडम्बर का इस प्रकार उल्लेख मिलता है।

काचिदाडम्बरं नारी भुजसंभोगपीडितम्।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता।।

अर्थात् मदिरा के मदसे मोहित हुई कोई कमलनयनी नारी आडम्बर नामक वाद्य को अपनी भुजाओं के आलिङ्गन से दबाकर प्रगाढ निद्रा में निमग्न हो गयी।।45।।¹

पुष्कर वाद्य

आचार्य भरत ने स्वयुग में प्रचलित अवनद्ध वाद्यो की संख्या सौ बताई है। नाट्यशास्त्र में 33वें अध्याय में अवनद्ध वाद्यों का वर्णन मिलता है। आचार्य भरत ने सौ वाद्यों में से तीन वाद्यों को प्रमुख माना है। मृदंग, प्रणव और दर्दुर। “प्राचीन ग्रंथों में मृदंग प्रणव तथा दर्दुर को पुष्कर वाद्य कहा गया है।”² इन वाद्यों को अंग-प्रत्यंग के आधार पर विभाजित किया गया था प्रत्यंग वाद्य वह वाद्य था जिसमें स्वर मिलाने की कोई व्यवस्था नहीं थी ना ही मार्जन करने की (मार्जना स्वर मिलाने की पद्धति थी)। भरत काल में पुष्कर वाद्य को सबसे अधिक महत्व दिया गया है।

पुष्कर वाद्य की उत्पत्ति— पुष्कर आदि वाद्यों की उत्पत्ति के बारे में नाट्यशास्त्र में एक वृत्तान्त है। “जब आकाश में बादल छाए हुए थे तभी स्वाति मुनि जल लाने के लिए सरोवन पर गए और वेगपूर्वक वर्षा होने लगी। वायु वेग से सरोवन में पानी की बड़ी-बड़ी बूंदों के पड़ते समय कमल की बड़ी, छोटी, और मध्यम पत्तियों पर बूंदों के आघात से विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न हुईं। मुनि ने उन अपूर्व ध्वनियों को सुना और आश्चर्यचकित होकर उन्हें अपने मन में धारण किया और विश्वकर्मा की सहायता से मृत्तिका पुष्कर पणव और दुर्दर वाद्यो का निर्माण कर डाला। देवताओ की दुन्दुभि को

1- वाल्मीकि रामायण – सुन्दरकाण्ड पृ0सं0 119 प्रकाशक गीता प्रेस।

2- भारतीय संगीतवाद्य – डॉ0 लालमणि मित्र- पृ0सं0 188 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

सामने रखकर मुरज आलिंग्य तथा आंकिक नामक चर्म वाद्यों की रचना हुई। विचार और परीक्षण में दक्ष मुनि ने मृदंग, दर्दुर और पणव वाद्यों को चमड़े से मढ़कर उन्हे रस्सी या तन्तुओं से बॉध दिया। इसके पश्चात् उन्होने झल्लरी, पटह जैसे वाद्यो को लकड़ी तथा लोहे से बनाते हुए उन्हे भी चमड़े से मढ दिया।¹

स्वाति मुनि को त्रिपुष्कर के निर्माण की मूल प्रेरणा व परिकल्पना पुष्करिणी से मिली थी इसलिए इन्हे पुष्कर वाद्य कहा गया और इनके तीनों रूप त्रिपुष्कर या पुष्करत्रय के नाम से प्रसिद्ध हुए।² पुष्कर वाद्य के तीन अंग थे इसलिए इसे त्रिपुष्कर भी कहा गया। “भरतमुनी ने मृदंग के लिए पुष्कर शब्द का उल्लेख कई बार किया है तथा मृदंग के 3 रूपो हरीतकी यवाकृती तथा गौपुच्छाकृति के रूप में वर्णन किया है। आंकिक आलिंग्य और उर्ध्वक इन तीन मृदंगो को मिलाकर भी पुष्करत्रय के रूप में वर्णन मिलता है। कुछ विद्वान इन्ही 3 अंगो के वाद्य को त्रिपुष्कर के रूप मे स्वीकार करते है। भरत के वाम पुष्कर, दक्षिण पुष्कर इन शब्दो का उल्लेख बाँये तथा दाये मुख के लिये भी किया हैं।³

इन त्रिपुष्कर वाद्यों का वर्णन इस प्रकार हैं।

(अ) **आंकिक**— यह वाद्य वर्तमान के मृदंग या पखावज के अनुसार होकर उसे भी लिटाकर बजाया जाता था। यह अधिकतर लकड़ी का बनाया जाता था। भरतकाल में मृदंग माटी के भी बने होते थे। इसकी लम्बाई $3\frac{1}{2}$ विलात होकर यह मध्य में अधिक चौडा रहता था। बीच में से खोखला होकर इसके दो मुख होते थे। दोनों मुखों का व्यास 12 अंगुल होता था। दोनों मुखों पर चमड़े मढ़े रहते थे। यह चमड़ा गाय या बैल का दोषरहित सफेद चमकदार होता था।⁴

1— भारतीय संगीत शास्त्रों मे वाद्यों का चिन्तन — डॉ० अंजना भार्गव— पृ०सं० 137 प्रकाशक कनिष्ठ पब्लियशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2— तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियां — योगमाया शुक्ला— पृ०सं० 80 प्रकाशक कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

3— ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे— पृ०सं० 15 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

4— तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष — डॉ० निशी गुप्ता— पृ०सं० 95 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

(ब) उर्ध्वक— पुष्कर का यह अंग लकड़ी या माटी का बना होकर 4 विलात ऊँचा होता था। इसके मुख का व्यास 14 अंगुल का होता था। यह खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसका 1 ही मुख होता था। इसे वर्तमान के बायें के अनुसार ही डोरियों से कस दिया जाता था। पुष्कर वाद्य के स्वर स्थापना में इसकी यह विशेषता रहती थी कि इसको पंचम स्वर में मिलाया जाता था।¹

(स) आलिंग्य— पुष्कर का यह अंग भी लकड़ी का बना होता था। इसका भी एक ही मुख होता था। ऊँचाई 3 विलात तथा मुख का व्यास आठ अंगुल होता था। इसके पुड़ी को भी वर्तमान तबले के बायें के अनुसार ही कसा जाता था। इस अंग (मृदंग) को खर्ज स्वर में मिलाया जाता था।²

नाट्यशास्त्र में महर्षि भरत ने तीन प्रकार की मार्जनाओं का वर्णन किया है। स्वरों को मिलाने की पद्धति को मार्जना कहते हैं।

“त्रिपुष्कर में तीन मार्जनाएँ होती थी— 1 मायूरी, 2— अर्धमायूरी, 3— कार्मारवी। मायूरी में मृदंग के बाएँ अंग को गांधार स्वर में, दाहिने को षड्ज में तथा ऊपरवाले अंग को मध्यम में मिलाया जाता था। अर्धमायूरी में वे ही क्रमशः षड्ज ऋषभ तथा धैवल में मिलाये जाते थे। तीसरी मार्जना में स्वरों को मिलाने का क्रम ऋषभ षड्ज तथा मध्यम होता था।³

मृदंग

भारतीय संगीत के प्राचीनतम आधार ग्रंथ नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के युग में त्रिपुष्कर प्रमुख अवनद्धवाद्य था जिसके अविष्कार की प्रेरण स्वति मुनि को वर्षा ऋतु में पुष्कर (तालाब) के बड़े, मध्यम, छोटे आकार वाले कमलपत्रों पर गिरती हुई

1— ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे — पृ०सं० 17 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2— ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे — पृ०सं० 17 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

3— संगीत बोध — डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये — पृ०सं० 84, 85 प्रकाशक मध्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

जल की बूँदों से उत्पन्न पट-पट शब्द की विभिन्न गम्भीर व मधुर ध्वनियों से मिली थी।¹ इन ध्वनियों के आधार पर तीन प्रकार के वाद्य का निर्माण हुआ। जिन्हे त्रिपुष्कर, पुष्करत्रय नाम दिया गया। त्रिपुष्कर के तीन भागों में से दो भाग खड़े होते थे जिन्हे उर्ध्वक, आलिंग्य कहा गया और लेटे हुए भाग को अंकिक कहा जाता था जो अंक (गोद) में रखकर बजाया जाता था। अन्य भागों की अपेक्षा यह महत्वपूर्ण समझा जाता है। मृदंग को कई स्थानों में पुष्करत्रय कहा गया है। “मृदंग के प्रायः तीन प्रकार प्रचलित हैं इन्हे क्रम से यवाकृति, हरीतकी और गोपुच्छाकृति कहते हैं। जौ (यव-अन्न) के दाने के आकार वाले को यवाकृति बड़ी हरड (हरीतकी) के आकार वाले को हरीतकी और जो एक ओर से मोटा तथा दूसरी ओर से पतला (गाय की पूँछ की भाँति का) हो उसे गोपुच्छाकृति मृदंग कहते हैं।”²

“वास्तव में महर्षि भरत ने मृदंग का जिस प्रकार से वर्णन किया है वह सामान्यतः भ्रामक प्रतीत होता है। क्योंकि एक ओर तो उन्होंने मृदंग के तीन रूप बताये हैं, हरीतकी, यवाकृति तथा गोपुच्छा। जिससे ये तीनों मृदंग के ही रूप-भेद प्रतीत होते हैं, किन्तु उसके बाद ही उन्होंने यह भी कहा है कि आंकिक का हरीतकी के समान, उर्ध्वक का यवा के समान तथा आलिंग्य का गोपुच्छा के समान रूप होता है।”³ भरत ने नाट्यशास्त्र में मृदंग का अलग से वर्णन न करके मृदंग का वर्णन त्रिपुष्कर के रूप में ही किया है। “भरत के नाट्यशास्त्र के चौतीसवें अध्याय में एक स्थान पर कहा है कि सुख प्रदान करने वाली, मांगलिक होने के कारण इसे मृदंग कहते हैं। मुलायम मिट्टी से बने हुई होने के कारण इसे मुरज कहते हैं। भ्रमण करने वाली होने के कारण इसे माण्ड कहते हैं। तथा पीटकर बजायी जाने के कारण इसे आतोद्य कहते हैं।”⁴

1- तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियाँ – योगमाया शुक्ला- पृ०सं० 29 प्रकाशक कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

2- ताल प्रकाश – भगवत शरण शर्मा पृ०सं० 262 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश।

3- भारतीय संगीतवाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र – पृ०सं० 191 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

4- भारतीय संगीतवाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र – पृ०सं० 189, 190 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

मृदंग की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में अनेक कथाओं का भी उल्लेख मिलता है।

मृदंग की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में वर्णित हुआ है कि देवाधिदेव महादेव ने सत्य युग में महाबली त्रिपुरासुर का घोर संग्राम में विनाश कर इन्द्र और अन्य देवताओं के सम्मुख आनन्द से नृत्य किया था। त्रिपुरासुर वध के बाद उसके रक्त से भीगकर जो कीचड़ उत्पन्न हुआ उससे ब्रम्हा ने सर्वप्रथम मृदंग का निर्माण किया और उसी असुर के चमड़े का आच्छादन और अस्थियों का गुल्म उस वाद्य में लगाया। ऐसा भी उल्लेख है कि ब्रह्म के आदेशानुसार गणेश ने इस नव निर्मित मृदंग वाद्य पर सर्वप्रथम ताल बजाया। मृदंग— मृत्तिकामय जिसका अंग है वही मृदंग है।¹

वही मृदंग की उत्पत्ति का अन्य मत है कि “मृदंग की उत्पत्ति शंकर के डमरू से हुई। सृष्टि के प्रलयकाल में जब ताण्डव करते हुए शंकर ने अपना डमरू बजाया तो उसी समय ब्रह्म जी ने डमरू के आधार पर मिट्टी से मृदंग की रचना की और सर्वप्रथम गणेश जी ने उसे बजाया। मृदंग वादन में गणेश परन का प्रयोग इस तथ्य को बल देता है।²

“मृदंग लक्षमणम् 8 ग्रंथ में भगवान श्रीकृष्ण से सम्बन्धित यह कथा भी प्राप्त होती है कि द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध करके उसके सिर और पैरो का काटकर उसके शरीर को दोनो चमड़े से मढ़ दिया और विजयोल्लास में उसका वादन किया।³ देवी—देवताओं का यह अत्यन्त प्रिय वाद्य माना जाता है। इसकी गम्भीर, ओजपूर्ण, उत्साह वर्धक ध्वनि के कारण ही यह प्रिय युद्ध वाद्य के रूप में वर्णन मिलता है।

1— भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन — डॉ० अरुण कुमार सेन— पृ०सं० 141 प्रकाशक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

2— पं० राम शंकर दास पागलदास — सीमा जौहरी— पृ०सं० 138 प्रकाशक महामाया पब्लिशिंग हाऊस।

3— वही

“भगवती दुर्गा को तो तालनाद प्रिय चैव मृदंग ध्वनि तत्पराः कहा गया है। महिषासुर से युद्ध करते समय मृदंग की तालबद्ध ध्वनि चालू थी जिसके नाद में भगवती युद्ध कर रही थी।”¹

“कालिका पुराण में इसे युद्ध वाद्य के रूप में स्वीकारा गया है:—

वन्धि ज्वालादि रूपा प्रलय घन घटा घोर नादम् नदन्ती,
वादन्ती चन्द्रघण्टाम, डमरू कपटहान वेणु वीणा मृदंगान्।
त्रैलोक्यं त्रासयन्ती ककह कहकहा मातरं भाषयन्ती,
नित्यं मघं पिवन्ती हरतु मम भयं भद्रदा भद्रकाली।²

मृदंग दो शब्द मृत् + अंग से बना है मृत् मिट्टी और अंग शरीर अर्थात् मिट्टी से बना वाद्य मृदंग कहलाया।

कुछ विद्वान अंग का अर्थ मृदंग के एक किसी भाग का माटी का होना बताते हैं, और इस प्रकार इस वाद्य के नामकरा के सम्बन्ध में दो अर्थ निकाले जाते हैं—

- 1— ऐसा वाद्य जिसका शरीर (अंग) मिट्टी का बना हो।
- 2— ऐसा वाद्य जिसके शरीर का एक अंग (अंश) माटी से बना हो।³

भारत काल के त्रिपुष्कर वाद्य के तीन भागों में से दो खड़े भाग समय के साथ विलुप्त हों गये केवल एक भाग जिसे गोद में रखकर बजाते थे वही बचा रहा यही वर्तमान समय का मृदंग कहा जाता है।

संगीत दर्पण में उल्लेख है कि मृदा निर्मित यह वाद्य शीघ्रनष्ट हो जाता था इसीलिए द्वापर युग में कृष्ण के समकालीन मृदंगों का निर्माण काष्ठ से हुआ। काष्ठ—निर्मित मृदंग की ध्वनि मृत्तिका—निर्मित मृदंग से अधिक मधुर होने के कारण किसी—किसी ग्रन्थकार ने काष्ठ निर्मित मृदंगों को मधुर—मृदंग कहा है।⁴

- 1— छायाण्ट अंक 66 राजा छत्रपति सिंह— पृ0सं0 48 प्रकाशक उ0प्र0 नाटक अकादमी।
- 2— वही
- 3— ताल वाद्य शास्त्र — मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ0सं0 17, 18 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियार।
- 4— भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन — डॉ0 अरुण कुमार सेन — पृ0सं0 141 प्रकाशक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

वैदिक काल में मृदंग का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। किन्तु वाल्मीकि रामायण में मृदंग का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि रामायण के पूर्व ही इस वाद्य का व्यापक प्रचार हो चुका था।

सुन्दरकाण्ड के दशमः सर्ग श्लोक संख्या 42 में मृदंग का उल्लेख मिलता है।

अन्या कनकसंकाशैर्भुदुयीनैर्मनोरमैः।

मृदग्दः परिविद्ध्याग्दैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥ 42 ॥

अर्थात्— कोई मतवाले नयानोवाली दूसरी सुन्दरी अपने सुवर्णसदृश गौर, कोमल, पुष्ट और मनोरम अंगों से मृदग्द को दबाकर गाढ़ निद्रा में सो गयी थी ॥42॥¹

इस प्रकार रामायण काल में अवनद्ध वाद्यों में मृदंग ही सर्वाधिक प्रचलित वाद्य था। मार्कण्डेय पुराण में दुदभी तथा मृदंग का उल्लेख मिलता है। शारंगदेव के काल में मृदंग का स्थान मर्दल, मुरज ने ले लिया था। “आचार्य शरंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में मर्दल तथा मुरज को मृदंग का ही पर्याय बताते हुये कहा है” —

निगदीन्त मृदंगतम् मर्दलं मुरजं तथा।

प्रोक्तं मृदंग शब्देन् मुनिनां पुष्कर त्रियम् ॥

भरत मुनि ने भी मृदंग को मुरज का ही पर्याय मानते हुये अवनद्ध वाद्यों में इसे सर्वश्रेष्ठ माना है।²

मृदंग में लगने वाला चमड़ा न तो पुराना हो, न कटा-फटा हो, न कौए के द्वारा हत किया हो, न मोटा हो तथा न आग अथवा धूम्र आदि से खराब हुआ हो। चमड़े का रंग नवीन पल्लव के समान अथवा हिम तथा कुन्द के समान श्वेत एवं चमकदार हो एवं सभी दोषों से रहित हो। ऐसे चमड़े को रोम-रहित कर एक रात पानी में भिगोकर रखा जाए तथा दूसरे दिन उसे निकाला जाए। पहले उनका खूब मर्दन किया जाए, उसके बाद मृदंग पर चढ़ाया जाए।³

1— वाल्मीकी रामायण सुन्दर काण्ड पृ0सं0 118 प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर।

2— छायाण्ट अंक 66 राजा छत्रपति सिंह— पृ0सं0 49 प्रकाशक उ0प्र0 नाटक अकादमी।

3— भारतीय संगीतवाद्य — डॉ0 लालमणि मित्र — पृ0सं0 195 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

मृदंग वादन कला का पर्याप्त विकास ई०पू० शताब्दियों तक हो चुका था। अक्षरो के माध्यम से मृदंग से विभिन्न बोल बनाये जाते थे। ऐसे अक्षर कुल 16 थे – क, ख, ग, घ, त, थ, द, ध, ट, ठ, ड, ढ और य, र, ल, व। बोलों के लिए करण संज्ञा थी। ऐसे कारण दो प्रकार के थे— सरल तथा संयुक्त। सरल करण में एक ही हाथ का प्रयोग होता था। संयुक्त करण के लिए दोनों हाथों का प्रयोग किया जाता था। करण बजाने के समय सभी अंगुलियों का यथायोग्य प्रयोग किया जाता था प्रहार (थाप) तीन प्रकार से दिया जाता था। निगृहीत, अर्धनिगृहीत और मुक्त। प्रथम में थाप देने के बाद हाथ को मृदंग के मुँह से दूर नहीं किया जाता था। दूसरे में हाथ को थाप देने के बाद अंशतः दूर किया जाता था। मुक्त में थाप देने के बाद हाथ को पूर्णतः अलग किया जाता था।¹

संगीत सम्राट मियां तानसेन ने एक ध्रुपद में कहा है—

देवन पति महादेव साजन पति मृदंगा ।

स्पष्टतः मृदंग एक सर्वश्रेष्ठ ताल वाद्य है। अतः मैं इस वाद्य की वन्दना करता हूँ।²

पणव

यह भरतकालीन प्रमुख वाद्य था। आचार्य भरत ने मृदंग के बाद पणव वाद्य को अत्यन्त महत्व दिया। प्राचीन ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण में भी पणव का उल्लेख मिलता है।

भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी ।

पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥ 43 ॥

अर्थात् नशेसे थकी हुई कोई कृशोदरी अनिन्द्य सुन्दरी रमणी अपने भुजपाशों के बीच में स्थित और काँख में दबे हुए पणव के साथ ही सो गयी थी ॥ 43 ॥³

1— संगीत बोध डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर पराजये— पृ०सं० 75 प्रकाशक मध्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल ।

2— छायाण्ट अंक 66 राजा छत्रपति सिंह— पृ०सं० 41 प्रकाशन ३०प्र० नाटक अकादमी ।

3— वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड पृ०सं० 118 प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर ।

“महर्षि भरत ने मृदंग के साथ-साथ पणव तथा दुर्दर को स्वाति मुनि के द्वारा विश्वकर्मा की सहायता से बनाया हुआ माना है।

ध्यात्वा सृष्टिं मृदङ्गानां पुष्कारानसृजत ततः।

पणवं दर्दरं चैव सहितो विश्वकर्मणा॥

(भ०ना० 34-9)¹

“महर्षि भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र के अध्याय 33 श्लोक 247-249 में पणव की रचना (बनावट) का विवेचन किया है। इसके अनुसार पणव की लम्बाई 16 अंगुल थी। यह लकड़ी से बना होकर बीच में खोखला रहता था। इसके दो मुख होकर उनका व्यास 5 अंगुल रहता था। खोड़ के बीच का व्यास 8 अंगुल होता था। खोड़ को पोल करने के बाद मुखों पर काठ की मुटाई 1/2 अंगुल होती थी। खोड़ बीच में 4 अंगुल व्यास में पोला रहता था।²

पणव के चमड़े सम्बन्धि जानकारी भी नाट्यशास्त्र में मिलती है “पणव के दोनो मुख कोमल चमड़े से मढ़े जाते थे जिन्हे सुतली से कस दिया जाता था। सुतलियों का यह कसाव कुछ ढीला रखा जाता था। जिसे वादन के समय बायें हाथ से मध्य भाग को दबाकर तथा ढीला कर आवश्यकतानुसार ऊँची-नीची ध्वनि निकाली जाती थी। महर्षि भरत के अनुसार पणव में निम्नलिखित अक्षर निकलते थे।

क, ख, ग, ट, ण, दे, वा, ह्ण, र, ला, कु, लि, लं, घ्र, णे, कि, रि, ह्ण।³

पणव में प्रयुक्त होने वाले अन्य बोलो या बोल समूहों के वादन के सम्बन्ध में भरत ने कहा है कि बंधी हुई सुतलियों को बाये हाथ से कसकर या ढीला करके दाहिने हाथ तर्जनी, अनामिका कनिष्ठा, अंगुलियों द्वारा विभिन्न बोलों का तथा बोल समूहों का वादन किया जाता था। सुतली को बाये हाथ के दबाव एवं कसाव के बाद दाहिने हाथ से क, ख, त, न तथा ढील देने पर ल, घ वर्ण निकलते थे।⁴

1- भारतीय संगीत वाद्य - डॉ० लालमणि मिश्र - पृ०सं० 171 प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

2- ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 80 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

3- भारतीय संगीत वाद्य - लालमणि मिश्र पृ०सं० 172 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

4- ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 80 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

दर्दर अथवा दर्दुर

यह वाद्य घट के अनुसार होता था घट का व्यास 16 अंगुल प्रमाण का तथा मुख का व्यास 12 अंगुल प्रमाण बताया है। घट के परत की मुटाई तथा मुख की किनार मोटी बताई है मुख पर चमड़े की पुडी लगाई जाती थी जिसका विस्तार मुख की अपेक्षा बड़ा होता था। पुडी के चमड़े किनार पर छेद किये जाते थे। चमड़े को सुतली द्वारा बने छेदों से पिरो कर घट से कस दिया जाता था। इसमें विलेपन (स्याही) होने का प्रमाण नहीं मिलता है चमड़ा अन्य वाद्यों के समान ही नया दोष रहित, चिकना कमाया हुआ, स्वच्छ सफेद चमकदार बताया है। दुर्दर के द, य, स, क, ह, ल, म, ट, त, थ, न आदि। पटाक्षर उसी प्रकार दंड स्पेण्ड ट्रेण्ड कहुला मटत्थि देंग, नेग आदि का प्रयोग भरत ने बताया है।¹

दर्दुर में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के सम्बन्ध में महर्षि भरत कहते हैं—

रेक्लृतिकृत्खनोत्वनोधन्मोगोणेहधिण्णसंयुक्ताः ।

इति दर्दरे प्रहाराः कार्या मुक्ता निषण्णाश्च ॥ 85 ॥

(भ० ना० अध्याय 34)

उपर्युक्त शब्दों को वाद्य पर निकालने के लिए दोनों हाथों का प्रयोग किया जाता था। दाहिने हाथ का प्रयोग मुक्त, अर्धमुक्त तथा बन्द ध्वनियों के वादन के लिए होता था। बायें हाथ का प्रयोग दाहिने हाथ के सहायक के रूप में होता था।²

भरत काल के बाद इसका महत्व कम हो गया तथा बाद में संगीत आचार्यों ने घट के रूप में उल्लेख किया है। संगीत रत्नाकर में उल्लेखित घट चर्म रहित वाद्य है। वर्तमान दक्षिण संगीत का घटम् वाद्य भी चर्म रहित है।³

1— ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 81, 82 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 164 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

3— ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 82 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

पटह

मृदंग वाद्य के अतिरिक्त पटह वाद्य का ही सर्वाधिक प्रसार रहा। आचार्य भरत ने पटह को प्रत्यंग वाद्य के अन्तर्गत रखा है। संगीत परिजात के अनुसार पटह का अर्थ ढोलक है। कई ग्रन्थों में तो सर्वाधिक महत्व पटह वाद्य को दिया है। यह शास्त्रीय तथा लोक दोनों संगीत में उपयुक्त है। वाल्मीकि रामायण में भी पटह का उल्लेख मिलता है। सुन्दरकाण्ड सर्ग 10 में पटह का वर्णन इस प्रकार है।

पटह चारुसर्वाङ्गी न्यस्य शोते शुभस्तनी।

चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ॥39॥

अर्थात् कोई सर्वाङ्गसुन्दरी एवं रुचिर कुचोवाली कामिनी पटह को अपने नीचे रखकर सो रही थी मानो चिर काल के पश्चात् प्रियतम को निकट पाकर कोई प्रेयसी उसे हृदय लगाये सो रही हो ॥39॥¹

संगीत ग्रन्थों में पटह के दो रूप बताये गये हैं। 1 देशी पटह 2 मार्ग पटह

देशी पटह— इसकी लम्बाई डेढ़ हाथ की होती है तथा इसका दक्षिण और वाम मुख क्रमशः सात तथा साढ़े छह अंगुल व्यास के होते हैं। शेष बातें मार्गी पटह की भांति ही होती हैं। पटह के लिए खैर की लकड़ी सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। देशी पटह के आकार में सामान्य अन्तर भी हो सकता है।²

मार्ग पटह— इसकी लम्बाई डेढ़ हाथ से ढाई हाथ तक की होती है तथा बीच का भाग कुछ उठा हुआ होता है इसके दाहिने मुख का व्यास साढ़े ग्यारह अंगुल का तथा वाम मुख साढ़े दस अंगुल का होता है। काठ, भीतर से खोखला होता है तथा उसके दोनों मुख गोल होते हैं दाहिने तथा बायें मुख पर लोहे अथवा काठ की हँसुली पहनाकर उन्हें चमड़े से लपेट दिया जाता है, दाहिने मुख पर पतला चमड़ा तथा वाम मुख पर मोटा चमड़ा मढ़ा जाता है इन हँसुलियों में सात-सात छेद कर रेशम की डोरी पिरो दी जाती है जिसमें सोना पीतल अथवा लोहे के छल्ले डाल दिये जाते हैं।³ पटह तें निम्नलिखित सोलह वर्ण प्रयुक्त होते हैं।

1— सुन्दर काण्ड पृ0सं0 117, 118 प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर।

2— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ0 लालमणि मिश्र पृष्ठ सं0—174 प्रकाशक भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली

3— वही

क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, र और ह इन्हीं अक्षरों के संयोग से अनेक बोलों की रचना की जाती है। उदाहरणार्थ— किण, खण, जिण, घण, टण, ठण, तण, थण, दण, हण आदि।

इसी प्रकार अन्य अक्षरों के संयोग से भी भिन्न-भिन्न बोलों की रचना की जाती है। पटह को लगभग एक हाथ की मुड़ी हुई डण्डी से भी बनाया जाता है।¹

“मुख्य पाट 5 प्रकार के बताये जाते हैं जो शिवजी के मुख से उत्पन्न हुए—

1. नागबंधन— जो संघोजात मुख से उत्पन्न हुआ।
2. स्वास्तिक— जो वामदेव के मुख से उत्पन्न हुआ।
3. अलग्र— जो अधोश के मुख से उत्पन्न हुआ।
4. शुद्ध— जो तत्पुरुष से शुद्धि उत्पन्न हुआ।
5. समस्खलित— जो ईशान मुख से उत्पन्न हुआ।

पाटो के देवता

- | | | |
|-----------------------|-------------------|----------------------------------|
| 1. नागबंध — ब्रह्मा | 3. अलग्र — शिव | |
| 2. स्वास्तिक — विष्णु | 4. शुद्धि — सूर्य | 5. समस्खलित — चंद्र ² |

प्राचीन कला में अवनद्ध वाद्य में बजने वाले बोलों को पाट कहा जाता था।

“महाकवि कालिदास की कृतियों में पटह के विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं इस वाद्य का प्रयोग विविध मांगलिक अवसरों पर कालिदास द्वारा किया गया है। भगवान् शिव की संध्या पूजा के अवसर का प्रकरण मेघदूत के पूर्व मेघ अध्याय में इस प्रकार है—

स्थातत्यं में नयन विषयं यावदव्येति भानुः।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनःश्लाघनीयम्॥

हे जलधर ! जब तुम भगवान् शिव की नगरी उज्जयिनी पहुंचना, तो वहां तक ठहरना जब तक सूर्य न ढल जाये और संध्या न हो जाए। संध्या के समय भगवान् शिव की संध्या पूजा में तुम अपने गम्भीर गर्जन द्वारा पटह का कार्य करना, जिसका अखण्ड फल तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।”³

1— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मिश्र पृ० सं०—174, 175 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

2— ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 85 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

3— संगीत जुलाई 2007 श्रीमती किशकु श्रीवास्तव पृ०सं० 8 प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस।

झल्लरी

जिन अवनद्ध वाद्यों में स्वर मिलाने की कोई व्यवस्था नहीं थी उन्हें महर्षि भरत ने प्रत्यंग वाद्य माना है प्रत्यंग वाद्यों में झल्लरी, पटह, भेरी, झंझा, दुन्दुभि, डिण्डिम आदि की गणना की है।¹

इस वाद्य का उल्लेख संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के श्लोक संख्या 1139 में भी मिलता है जो इस प्रकार से है।

स्यात्तदघपलो भाण परिधौ द्वादशांगुलः।

अन्यन्तु झल्लरीलक्ष्म तस्य श्रीशङ्खिणोदितम्॥

झल्लरी के साथ-साथ उसका छोटा रूप भी प्रचलित था जिसे भाण कहते थे। झल्लरी का जो रूप संगीत रत्नाकर में उपलब्ध होता है उसके अनुरूप व आधुनिक चंग या खंजरी के समान प्रतीत होता है।²

“इसके वजन एवं आकार सम्बन्धी वर्णन (6/1137-1139) संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय ने मिलता है इस वाद्य का वजन शारंगदेव ने 26 पल (वर्तमान 1.5 किलो) बताया है यह लकड़ी की बनाई जाती है इसकी लम्बाई 13 अंगुल होती थी तथा इसके मुख का व्यास 18 अंगुल होती थी। इसका एक ही मुख होता था। इसके अंग में (गले में) दो छिद्र होते थे। जिसमें से डोरी डाली जाती थी। इसका मुख चमड़े से बद्ध (मढा) होता था। उसको बायें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से वादन करते थे।³

“संगीतसार के अनुसार यह चमड़े से मढा अवनद्ध वाद्य है। बाये हाथ के अंगूठे में लटकाकर दाहिने हाथ के शंकु द्वारा इसका वादन करना चाहिए। संगीतसार का वर्णन संगीत रत्नाकर से प्रभावित है क्योंकि संगीत रत्नाकर की रचना के कुछ समय पश्चात् ही रचे जाने वाले संगीतोनिषत्सारोद्धार तथा संगीत परिजात आदि में इसे घन वाद्य माना गया है। सुधाकलश ने झल्लरी के लिए कहा है।

झल्लरी स्थालरूपिणी⁴

-
- 1- भारतीय संगीत वाद्य डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 151 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।
 - 2- पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियां डॉ० अजय कुमार पृ०सं० 34, 35 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
 - 3- ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 83 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्व०
 - 4- भारतीय संगीत वाद्य डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 152 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

हुडुक्का या आवज

महर्षि भरत द्वारा उल्लेखित पणव वाद्य को देखने पर लगता है कि पणव ही भरत काल के बाद आकार परिवर्तन से आवज या हुडुक्का कहलाया है।

जायसी कृत पद्मावत के "संजीवनी भाष्य में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल आवज की उत्पत्ति आतोद्य से बताते हैं। नाट्यशास्त्र में आतोद्य का उल्लेख हुआ है। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने स्पष्ट लिखा है कि हुडुक्का को ही जानकर आवज या स्कंधावज कहते थे आवज बजाने वाले को आउज तथा हुडुक्का बजाने वाले को हुडुकिये कहते थे।¹

लक्ष्यज्ञास्तवावजं प्राहुरिमां स्कनधावजं तथा ॥²

(संगीत रत्नाकर 6/1078)

आइने अकबरी ग्रन्थ में भी आवज को हुडुक्क का पर्याय कहा गया है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इस वाद्य को विभिन्न सांगीतिक ग्रन्थों में अलग-अलग समय में कभी आवज तथा कभी हुडुक्का के नाम से जाना जाता रहा है जबकि वास्तविक रूप में वाद्य एक है तथा नाम (आवज तथा हुडुक्का) अलग-अलग हैं। आइने अकबरी के अनुसार आवज वाद्य को देखकर ऐसा लगता है कि मानो दो नगाड़े पीछे से जोड़ दिये गये हो।³

शाडग्देग ने हुडुक्का का वर्णन इस प्रकार किया है। दीर्घता में हाथ के प्रमाण का परिधि अर्थात् गोलाई के प्रमाण में अट्ठाईस अंगुल का होता है। पिण्ड का दल एकांगुल का, उसके दोनों मुख का व्यास सात अंगुल का होता है। हर एक मुख में चमड़े से बनी वल्ली बांधी जाती हैं। मुख वल्ली के मध्य चर्मचारित भाग ग्यारह अंगुल का, स्थूलता में सवा अंगुल पूर्वोक्त उछली के बद्धमुख के साथ होना चाहिए। दोनो मण्डल के बन्धन रज्जु (रस्सी की गांठ) के प्रवेश के लिए छः रन्ध्र होने चाहिए।⁴

1— ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 80, 81 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन डॉ० अंजना भार्गव पृ०सं० 165 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

3— तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष डॉ० निशी गुप्ता पृ०सं० 182, 183 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

4— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन डॉ० अंजना भार्गव पृ०सं० 164 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

भेरी

हिन्दी शब्द सागर के अनुसार भेरी वाद्य ढोल, नगाड़ा तथा ढक्का वाद्य के समान है किन्तु भेरी न तो ढोल न नगाड़ा और न ही ढक्का वाद्य के समान हैं। यह वस्तुतः मृदंग जाति की धातु की बनी दो मुखी वाद्य है संगीत रत्नाकर के अनुसार भेरी ताँबे की धातु की बनी दो मुखी वाद्य हैं। जिसकी लम्बाई तीन बालिशत तथा मुखों का व्यास एक हाथ लम्बे व्यास का होता है जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है। दोनों मुखों का चमड़ा डोरियों से कसा जाता है जिनमें कांसे के कड़े पड़े रहते हैं।¹

भानुजी दीक्षित ने इसकी व्युत्पत्ति भी धातु (भय खाना, भय होना) से बतलाई है। विभेत्यस्य रवात् अर्थात् जिसके शब्द से शत्रु भय खाते हैं वह भेरी है।²

सोमेश्वर ने इसे गम्भीर ध्वनि वाला, महान काया (बड़ा आकार) और महान् रव युक्त कहा है।

ततोऽधिका भवेद् भेरी भूरिगम्भीर निःस्वना ।

सूतभूजात (चूतद्रुजाति) सज्जातो महाकायो महारवः।³

निसार

कास्यजस्तम्रजो लौहो वोत्तमो मध्यमोऽधमः ॥1153॥

(संगीतरत्नाकर के वाद्याध्याय से उद्धृत)

संगीतरत्नाकर के अनुसार निसार कांसो, ताँबे अथवा लोहे का बना हुआ वाद्य होता है जो क्रमशः उत्तम, मध्यम अथवा अधम माना जाता है। इसके पेंदे में कांसा भारा होता है तथा मुख भैंस के चमड़े से मढ़ा होता है इसका मुख बड़ा तथा मुख छोटा होता है इसे चमड़े से जिसमें कड़े लगे होते हैं कस दिया जाता है। इसे चमड़े से लगे हुये कोणो से बजाया जाता है। इसका दृढ़ शब्द भीरुओं को दहलानेवाला तथा

1— तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष डॉ० निशी गुप्ता पृ०सं० 9 187 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2— भारतीय संगीत का इतिहास — डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह — पृ०सं० 172 प्रकाशक संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता।

3— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यो का चिन्तन — डॉ० अर्जना भार्गव — पृ०सं० 171, 172 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

वीरो को रोमांचित करने वाला होता है।¹ इस वाद्य का वादन युद्ध में किया जाता रहा निसार वाद्य की ध्वनि कठोर एवं गम्भीर है यह युद्ध में सैनिकों का हौसला उत्साह बढ़ाने का कार्य करता था कई मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में भी निसार शब्द मिलता है।

करटा

संगीत रत्नाकर संगीत समयसार तथा संगीत मकरन्द जैसे मध्य युगीन संगीत ग्रन्थों में करटा वाद्य के वर्णन से जहाँ यह सिद्ध होता है कि यह मध्ययुगीन तालवाद्य है वही उपर्युक्त विभिन्न ग्रन्थों में करटा वाद्य के आकार-प्रकार का जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है वह भिन्न है।²

इस वाद्य के आकार का वर्णन यह है "बीजक वृक्ष से उत्पन्न पिण्ड का दल अंगुल के चतुर्थांश प्रमाण का एक हाथ (चौतीस अंगुल) की परिधि में चालीस अंगुल की और उसके दोनों मुख चौदह अंगुल के किसी में बारह अंगुल के किए जाते हैं। दोनों मुख में चमड़े से मढ़ी हुई लोह मण्डली है। मण्डली की परिधि बयालीस अंगुल है। दोनों मुख के चौदह रन्ध्रों से युक्त कवल से व्याप्त, दो वलयों को करते हुए तीन तन्त्री उन एक-एक रन्ध्रों के मध्य में रखनी चाहिए जिससे दो विग्निकाओं से मछली के आकार का बन्धन किया जाता है। उसको "करटा" कहते हैं। सोमेश्वर ने दो विज्जिकाएँ रन्ध्रों में एकान्तर में संयोजित करने को कहा है।³

बजाते समय इन पट्टियों में डोरी बांधकर गले में टांगा जा सकता था अथवा कमर में बांधा जा सकता था। इसका वादन दो कुडुप्पों से (लकड़ी के कोणों से) होता था। इसके पाट शारंगदेव ने करट, तिरकि, तिरिकिरि बताये हैं।⁴

- 1- पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियाँ — डॉ० अजय कुमार — पृ०सं० 39 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
- 2- ताल शास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष — डॉ० निशी गुप्ता — पृ०सं० 188 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
- 3- भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन — डॉ० अंजना भार्गवा — पृ०सं० 165 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
- 4- ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे — पृ०सं० 87 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर

घट

घट का उल्लेख प्राचीन काल से मिलता है। इस वाद्य का विस्तृत विवेचन मध्यकालीन ग्रन्थों में ही मिलता है। प्राचीनकाल में पाणिनी ने अष्टाध्यायी में (ईसा पूर्व 7वीं सदी) तथा भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में जिस दर्दर वाद्य का उल्लेख किया है वह दर्दर वाद्य घट के समान ही था। चमड़ी से मढ़े जाने वाले घट वाद्य का विकास त्रिमुखी एवं पंचमुखी घटों के रूप में हुआ।¹ वर्तमान समय में घट के दो रूप प्रचलित हैं पहला जिसमें मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है दूसरा जिसके मुख पर चमड़ा मढ़ा नहीं होता। “संगीत रत्नाकार में (6/1086,1087) घट वाद्य का उल्लेख शारंगदेव ने किया है। घट बड़े उदर (पेट) और छोटे मुख का होता था। इसके मुख के व्यास का उल्लेख नहीं किया है। घट का अंग चिकनी माटी का बनाकर उसे अच्छी तरह से पकाया जाता था। यह मजबूत होता था जिससे आसानी से टूटता नहीं था। इसके मुख पर चमड़ा कसकर बांध दिया जाता था। इसका वादन दोनों हाथों से किया जाता था। मर्दल के पाटवर्ण ही इसके पाटवर्ण थे।²

ढवस

“शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ (6.09.94) में ढवस वाद्य का उल्लेख किया है। यहां इसके अंग की लकड़ी का उल्लेख न होने से यह रक्तचंदन या खेर की लकड़ी का समझना चाहिए। (6/1158) इसकी लम्बाई 1 हाथ की होती थी। लकड़ी को अन्दर से खोखला किया जाता था। वाद्य के खोड की परिधि (गुलाई) 40 अंगुल प्रमाण की थी। दोनों मुखों का व्यास 12 अंगुल प्रमाण का होता था। दोनों मुखों पर बारीक बद्धी ने बने कड़े (गजरे) होते थे जिनमें मुख के ऊपर मढ़ा जाने वाला चमड़ा बद्ध किया जाता था। कड़े (गजरे) में 7 छिद्र होते थे।³

1- ताल वाद्य शास्त्र – डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 87 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2- वही

3- ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 87, 88 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

चूँकि इस वाद्य को गले में लटकाकर बजाया जाता है अतः वाद्य में एक मोटा डोर लगाने की भी प्रथा है। इस वाद्य के बायें मुख का वादन बाये हाथ से तथा दांये मुख का वादन दांये हाथ से लकड़ी के कोण द्वारा किया जाता है इसमें बजाये जाने वाले पाटाक्षर ढेकार (ढं ढं) युक्त होते हैं।¹

ढक्का

ढक्का का वर्णन संगीत रत्नाकर संगीत—मकरन्द संगीतसार मानसोल्लास आदि में प्राप्त है। सभी ग्रन्थों में वर्णन में यद्यपि संक्षिप्त अन्तर पाया जाता है किन्तु मूल रूप में यह वाद्य एक सा ही है। उक्त सभी ग्रंथों के आधार पर उसका रूप निम्नवत् माना जा सकता है।

जिस प्रकार ढवस की रचना की रचना होती है उसी प्रकार ढक्का की रचना भी की जाती है परन्तु इस ढक्का के दोनों मुख तेरह—तेरह अंगुल चौड़े रखे जाते हैं। इसको बायी बगल में दबाकर दाहिने हाथ से डण्डी द्वारा बजाया जाता है। इसको धौंसा भी कहते हैं। इसके पाटाक्षर है ढें, ढे हें।²

रुंजा

“रुंजा या रुंज इस वाद्य का उल्लेख “संगीत रत्नाकर” ग्रन्थ के अलावा संगीत पारिजात, संगीतसार इन ग्रन्थों में भी मिलता है शारंगदेव ने अन्य विद्वानों के अनुसार ऐसा उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त पाटवर्णों का उल्लेख मतंग मुनि के नाम से किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मतंग मुनि के काल 8वीं सदी में इस वाद्य का प्रचार रहा हो। मतंग मुनि द्वारा लिखित ग्रन्थ वृहत् देशी का वाद्यध्याय उपलब्ध नहीं है।”³

1— तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष — निशी गुप्ता पृ०सं० 189, 190 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2— भारतीय संगीत वाद्य — डॉ० लालमणि मिश्र पृ०सं० 152 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

3— ताल वाद्य शास्त्र डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 88, 89 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

इस वाद्य की बनावट “संगीत रत्नाकर के अनुसार—यह वाद्य खेर या रक्त चन्दन आदि लकड़ी का बना होकर दो मुखी होता है जिसकी लम्बाई 18 अंगुल तथा दोनो मुखों का व्यास 11 अंगुल होता है इसका आकार एक समान होता है दोनों मुखों पर कड़े (गजरे) चमड़े से बद्ध किये रहते हैं किन्तु बांये पर दो कड़े होते है। जिनमें से एक कड़ा जो बड़ा होता है वह मुख के ऊपर लगा रहता है तथा दूसरा जो छोटा होता है उसका व्यास चार अंगुल होता है।”¹

संगीत परिजात ग्रन्थ के अनुसार यह वाद्य लकड़ी या धातु से बना 7 मुट्ठी लम्बा, मुख एक विलात, नरम चर्म, दो मुख डोरी से मुख बद्ध डोरी में छल्ले, इस प्रकार का होता था। दांये मुख को कोण से घिसकर तथा बांए मुख को लकड़ी से पीटकर इसका वादन होता था।²

डमरू

डमरू को बहुत ही पवित्र वाद्य माना गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध भगवान शंकर से है। पुराणों में ऐसी मान्यता है कि ताण्डव नृत्य के समय भगवान शिव डमरू वाद्य का वादन करते है। भगवान शिव का वाद्य होने के कारण यह पुजनिय वाद्य है।

संगीतसार भाग दो के पृष्ठ संख्या 74 पर डमरू के लक्षण इस प्रकार से बताये गये है—

एक वितरिक्त लम्बा काठ लेकर आठ—आठ अँगुल चौड़े दो मुख जो कि मध्य में पतला हो तथा इन दोनों को चर्म से मढ़ना चाहिए चर्म को तानने वाले डोरों को बीच में बांध देना चाहिए। इसे बीच से पकड़ कर डोरन को दाबकर डंका से प्रहार करने पर सो की ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके पाटाक्षर ‘ड’ माने गये है। अन्य आचार्य क, र, ख, ट को चार वर्ण बताते है।³

1— तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष — डॉ० निशी गुप्ता पृ०सं० 190, 191 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

2— ताल वाद्य शास्त्र — डॉ० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृ०सं० 89 शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

3— पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ — डॉ० अजय कुमार — पृ०सं० 36 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

वर्तमान समय में इसका वादन कम ही लोग करते हैं यह वाद्य का प्रयोग या तो मंदिरों में पूजा के समय करते हैं या तमाशा दिखाने वाले लोग तमाशा दिखाते समय करते हैं।

डक्कली

इसका जो वर्णन संगीत रत्नाकर तथा संगीतसार में उपलब्ध होता है। उसके अनुसार इसका रूप निम्नोक्त होता है। बैल के सींग, हाथी के दाँत अथवा काँसे का नौ अंगुल का खोखला ढाँचा तैयार करें जिसके दोनों मुख चार-चार अंगुल वृत्त के बनाएँ। इन मुखों को चमड़े से मढ़कर इनमें ताँबे अथवा लोहे का कड़ा पहनाएँ। इन कड़ों में पाँच छेद कर उनमें बद्धी अथवा डोरी पहनाएँ जो न बहुत कसी हो, न बहुत ढीली। बीच में कमरबन्ध की भाँति डोरा बाँधे। इस वाद्य का उल्लेख संगीत ग्रन्थों में कम मिलता है।¹

सेल्लुका

सेल्लुका वाद्य का वर्णन मानसोल्लास संगीत रत्नाकर संगीत सार ग्रन्थों में मिलता है। “संगीत रत्नाकर के अनुसार इस वाद्य का वर्णन कुछ इस प्रकार है। यह विजयसार की लकड़ी का बना दो मुखी वाद्य है जिसकी लम्बाई छब्बीस अंगुल तथा दोनों मुखों का व्यास 10-10 अंगुल होता है। यह अन्दर से खोखला होता है तथा इसकी परिधि 30 अंगुल होती है। इसके दोनों मुखों पर तर्जनी अंगुली के बराबर मोटाई के बेल के कड़े लगाये जाते हैं जिनमें 6-6 छेद होते हैं।²

“सोमेश्वर ने सेल्लुका का वादन देवतानर्तन में कहा है, देवतानर्तने यस्या वादन परिकीर्तितम्।

डॉ० लालमणि मिश्र ने इसे आधुनिक बाल जाति का वाद्य माना है।³

-
- 1- भारतीय संगीत वाद्य - लालमणि मिश्र पृ०सं० 156 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
 - 2- ताल शास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष - डॉ० निशी गुप्ता - पृ०सं० 193 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
 - 3- भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन - डॉ० अर्जुना भार्गव - पृ०सं० 170 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।

त्रिवली

त्रिवली का वर्णन मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीत सुधा संगीतसार वाद्य प्रकाश आदि में पाया जाता है। “मानसोल्लास संगीत रत्नाकर तथा संगीतसार में इसके रूप का लगभग एक सा वर्णन प्राप्त होता है जो निम्न है : एक हाथ की लम्बाई वाले काठ को जो बीच में थोड़ा पतला हो तथा भीतर से खोखला हो और जिसके दोनों मुख सात-सात अंगुल के हो उसे त्रिवली कहते हैं। दोनों मुख चमड़े से मढ़े जाते हैं इसके लिए इन दोनों मुखों में लोहे के कड़े पहनाये जाते हैं तथा उनमें सात-सात छिद्र किये जाते हैं। इन छिद्रों में सुतली अथवा चमड़े की बद्धी डालकर उसे कसते हैं।”¹

सोमेश्वर ने मधुपान से प्रमत्त स्त्री के लास्य नर्तन में विशेष रूप से इसके वादन का उल्लेख किया है।

मधुपानप्रमत्तानां योषिता लास्यनर्तने।¹⁰⁶²

पखावज

वर्तमान समय में अवनद्ध वाद्यों की चर्चा करे तो केवल तबला पखावज की मुख्य अवनद्ध वाद्य प्रचलित है। पखावज की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इस सम्बन्ध में मृदंग ही मुख्य आधार माना गया है आचार्य भरतकालीन प्रचलित त्रिपुष्कर वाद्य के तीन अंग आंकित, आलिंग्य, उर्ध्वक थे। आंकिक यह वाद्य लेटाकर बजाया जाता था इस वाद्य को दो मुख थे। आंकिक यह वाद्य त्रिपुष्कर का प्रमुख वाद्य था। कालांतर में त्रिपुष्कर के दो अंग आलिंग्य, उर्ध्वक विलुप्त हो गये केवल आंकिक बाद ही प्रचलित रहा। यही वाद्य आगे चलकर कुछ परिवर्तन के साथ मृदंग, पखावज के रूप में प्रचलित हुआ। पखावज का अर्थ विकास उत्पत्ति की चर्चा द्वितीय अध्याय किया गया है।

1- भारतीय संगीत वाद्य – लालमणि मिश्र – पृ0सं0 163 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।

2- भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन – डॉ0 अंजना भार्गव – पृ0सं0 171 प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

तबला

वर्तमान समय में सबसे महत्वपूर्ण अवनद्ध वाद्य है। तबला की व्युत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित मत संगीत विद्वानों में नहीं है। इस वाद्य के अविष्कार के विषय में विद्वानों में अलग-अलग मत है। तबले की उत्पत्ति कब कैसे कहाँ हुई इस सम्बन्ध में कई बातें प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों ने इस वाद्य को विदेशी वाद्य माना है तो कुछ ने इसे भारतीय वाद्य माना है।

सादिक अली सिताब खाँ रचित पुस्तक सरमाये इशरत मौलवी मोहम्मद इस हाक कृत रिसाल-ए-तबला नवाजी और श्री चिरंजीत के अनुसार एक बार पखावजी भगवान दास उर्फ भवानी दास और सुधार खाँ ढाढ़ी के बीच हुई प्रतियोगिता में पराजित पखावजी सुधार खाँ ने पखावज को बीच से दो टुकड़ों में काट दिया और उसे उर्ध्वमुखी करके उस पर वादन किया। बीच से दो भागों में काट दिए जाने के बावजूद, जब वह पखावज बोला तब लोगों की प्रतिक्रिया हुई तब भी बोला इन नवनिर्मित वाद्य के लिए यही शब्द कालान्तर में तब बोला, तब्बोला और तबला नाम से प्रचलित हुआ।

लेकिन यहाँ यह विचारणीय है कि जब पखावज की दो-चार बद्धियाँ कट जाने से ही उससे सही ध्वनि नहीं निकलती है, तो पूरा पखावज ही काट देने से कैसी ध्वनि निकली होगी।¹

भरतकालीन त्रिपुष्कर वाद्य में तीन अंग बताये गये हैं। 1. आंकिक 2. उर्ध्वक 3. आलिंग्य। “आज मृदंग को जो स्वरूप प्रचलित है। वह भरत-कालीन त्रिपुष्कर का केवल आंकिक भाग है। अतः इस मत के पोषक यह मानते हैं कि खड़े रहकर बजने वाले भरत-कालीन मृदंग के दो भागों का प्रयोग ख्याल गायकी के साथ एक स्वतंत्र ताल वाद्य के रूप में होने लगा होगा जो यवन काल में कुछ परिवर्तित के पश्चात्

1- तबला पुराण - पं० विजयशंकर मिश्र - पृ०सं० 4, 5 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

तबला जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा”।¹

एक बहुत बड़ा वर्ग हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य और अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि हजरत अमीर खुसरो को तबले का अविष्कारक मानता है। अमीन खुसरो का काल 1253 से 1325 तक था। लेकिन स्वयं अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तको में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि उन्होंने तबला नामक किसी वाद्य का अविष्कार किया है।²

तबला की व्युत्पत्ति भरतकालीन दर्दुर वाद्य से भी मानी गई है। दर्दुर वाद्य चमड़े से मढ़ा हुआ घट था जिसका मुख ऊपर की ओर था परन्तु उसके दो भाग नहीं थे।³

कुछ विद्वानों ने तबले को विदेशो से आया माना है। उनके अनुसार वह अरेबियन, सुमेरियन, मेसोपोटेमियन अथवा फारसी संस्कृति से सम्बन्धित विदेशी ताल वाद्य है। इनके अनुसार प्राचीन काल में घोड़े या ऊँट पर रखकर अरेबिया में तबला और नक्कारा जैसे वाद्य लकड़ी से बजाये जाते थे जिसे तब्लजंग कहा जाता था। कुछ लोगों की धारणा है कि इसी तब्लजंग से तबला बना है। किन्तु तब्लजंग से मिलता जुलता एक वाद्य राजस्थान में आज भी मिलता है उसे भी युद्ध के समय बजाया जाता था।

अतः तब्लजंग भले विदेशी वाद्य हो, किन्तु उससे आज के हमारे तबले से कोई सम्बन्ध नहीं है।⁴

श्री अरविन्द मुलगाँवकर ने अपने ग्रन्थ तबला में बलग शब्द के प्रथम और तबल शब्द के अंतिम अंश बल क्रियापद बलग शब्द के प्रथम और तबला शब्द के अंतिम

-
- 1— पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें — डॉ० आबान ई० मिस्त्री — पृ०सं० 113 प्रकाशक पं० के०की० एस० जिजिना स्वर साधना समिति मुम्बई।
 - 2— तबल पुराण — पं० विजयशंकर मिश्र — पृ०सं० 5 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 - 3— संगीत में ताल वाद्यों की उपयोगिता — डॉ० चित्रा गुप्ता — पृ०सं० 139 प्रकाशक राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
 - 4— भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण — डॉ० स्वतन्त्र शर्मा — पृ०सं० 212 प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशक दिल्ली।

अंश बला क्रियापद को शब्द विकास की मूलकड़ी मानते हुए बल से तबल या बला से तबला शब्द की व्युत्पत्ति की सम्भावना हुई है।¹

श्री मुलगाँवकर की यह परिकल्पना ध्वनि के उच्चारण और अर्थसाम्य पर आधारित होने पर भी उसमें भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से बल या बला क्रियापद के पूर्व त उपसर्ग के योग व अर्थ विकास का कोई निश्चित और प्रमाणित आधार नहीं मिलता, अतएव बल या बला से तबल या तबला शब्द की व्युत्पत्ति होने की संभावना भी सन्देहास्पद प्रतीत होती है।²

आचार्य बृहस्पति जी अनुसार तबले के आविष्कर्ता मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार के प्रतिभा सम्पन्न कलाकार डॉ० खुसरो खाँ थे। खुसरो खाँ सदरांग के छोटे भाई थे तथा वे अनेक वाद्य वादन में परांगत थे। उनके मतानुसार खुसरो खाँ ने सितार वाद्य की संगति के लिए तबले का अविष्कार किया और उस पर सितारखानी ठेके का प्रचार किया।³

पन्द्रहवीं शताब्दी में सिक्खों के प्रथम गुरु नानकदेव ने अपने एक पद में तबल वाद्य का उल्लेख किया है—

तबल बाज बीचार सबहि सुणाइया।⁴

सुप्रसिद्ध ठाकुर जयदेव सिंह तबले को प्राचीन भारतीय लोक वाद्य का परिष्कृत रूप और तबला शब्द तबल का अपभ्रंश मानते हैं। उनके अनुसार तबला अपने अपरिष्कृत रूप में प्राचीन काल से ही भारत में था किन्तु 18वीं सदी तक न तो उसे तबला जोड़ी जैसा रूप प्राप्त था और न ही वह अधिक प्रचार में था। यही कारण है कि मोहम्मद शाह रंगीले के युग तक हम तबले की चर्चा नहीं कर पाते।⁵

1— प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं — डॉ० मोहिनी वर्मा — पृ०सं० 107 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग हाउस।

2— तबले के घराने वादन शैलियाँ एवं वंदिशे — डॉ० सुदर्शनराम पृ०सं० 8 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

3— पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें — डॉ० आबान ई० मिस्त्री — पृ०सं० 116 प्रकाशक पं० के०की० एस० जिजिना स्वर साधना समिति मुम्बई।

4— प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं — डॉ० मोहिनी वर्मा — पृ०सं० 107 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग हाउस।

5— प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं — डॉ० मोहिनी वर्मा — पृ०सं० 115 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग हाउस।

कुछ विद्वान तबला शब्द की व्युत्पत्ति फारसी के तवल्ल शब्द से मानते हैं। वास्तव में तबल शब्द भी मूलतः फारसी भाषा का न होकर अरबी भाषा का शब्द है और यह शब्द अरबी भाषा से फारसी भाषा में आकर प्रचलित हुआ।¹

यह निर्विवाद सत्य है कि तबले का घनिष्ठ सम्बन्ध पखावज से रहा है जो उसके पटाक्षर बोल बन्दिशो से स्पष्ट दिखता है तबले के विविध घरानों में पंजाब घराने की वादन शैली तथा बोल, बन्दिशो पखावज के अधिक निकट है।

पं० किशन महाराज के अनुसार तबले का जन्म स्थान पंजाब में है सिद्धार खाँ के पौत्र उ० मोदु खाँ की शादी पंजाब के किसी तबला-वादन की लड़की से हुयी थी इस अवसर पर उ० मोदु खाँ को पंजाबी गते दहेज में दी गयी थी जिससे स्पष्ट है कि पंजाब में तबला काफी प्राचीन काल से था और आज भी भारत का समस्त तबला घराना पंजाबी गतों को तबलों का प्रमुख अंग मानता है।²

ऐसा माना जाता है कि सिद्धार खाँ द्वारा 18वीं सदी के मध्य में (1750 के लगभग) तबले में सुधार कर, उसके कई बोलों को लिपिबद्ध कर उसे कायदा नाम दिया जाकर बोलो का विस्तार किया गया होगा क्योंकि 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में तबले के तालांगो की व्याख्या, वर्णों का निकास विधि एवं लिपिबद्ध कायदे आदि उपलब्ध हो चुके थे। इन्ही सिद्धार खाँ ने सर्व प्रथम तबला वादन शैली को प्रचार में लाया और यही से इस शैली को दिल्ली घराने के नाम से जाना जाने लगा।³

इस प्रकार दिल्ली घराना पहला तबले का घराना माना गया। अजराड़ा और लखनऊ घराने के विकास में दिल्ली घराने की ही अहम् भूमिका मानी जाती है।

-
- 1— भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यो का चिन्तन — डॉ० अंजना भार्गव — पृ०सं० 250 प्रकाशक कनिष्ठ पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 - 2— भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण — डॉ० स्वतन्त्र शर्मा — पृ०सं० 215 प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशक, दिल्ली।
 - 3— ताल वाद्य शास्त्र मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे पृ०सं० 124 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियार।

दिल्ली घराने के वंशजो ने ही आगे चलकर लखनऊ घराने की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही साथ दिल्ली घरानो के ही दो कलाकार ने आगे चलकर अजराड़ा घराने की भी नींव डाली। अतः घरानों की परिपाटी में ढाढ़ी परम्परा में जन्मे व्यक्ति उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी का नाम इस घराने के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध है।¹

इस प्रकार तबले के विभिन्न घराने विकसित हुए।

भारतीय संगीत में वाद्यों का विकास समयानुसार होता रहा है। वाद्यों का इतिहास हमें श्रृखलाबद्ध तरीके से मिलता है। प्रारम्भिक वाद्य अपनी सरल अवस्था में मिलते हैं। समयानुसार इसमें परिवर्तन हुआ और यह अधिक विकसित होते गये।

1— प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएँ डॉ० मोहिन वर्मा पृ०सं० 127 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।